गायत्रीतीर्थ
शान्तिकुञ्ज

youth.awgp.org

माँ की संस्कारशाला

सप्ताह-1

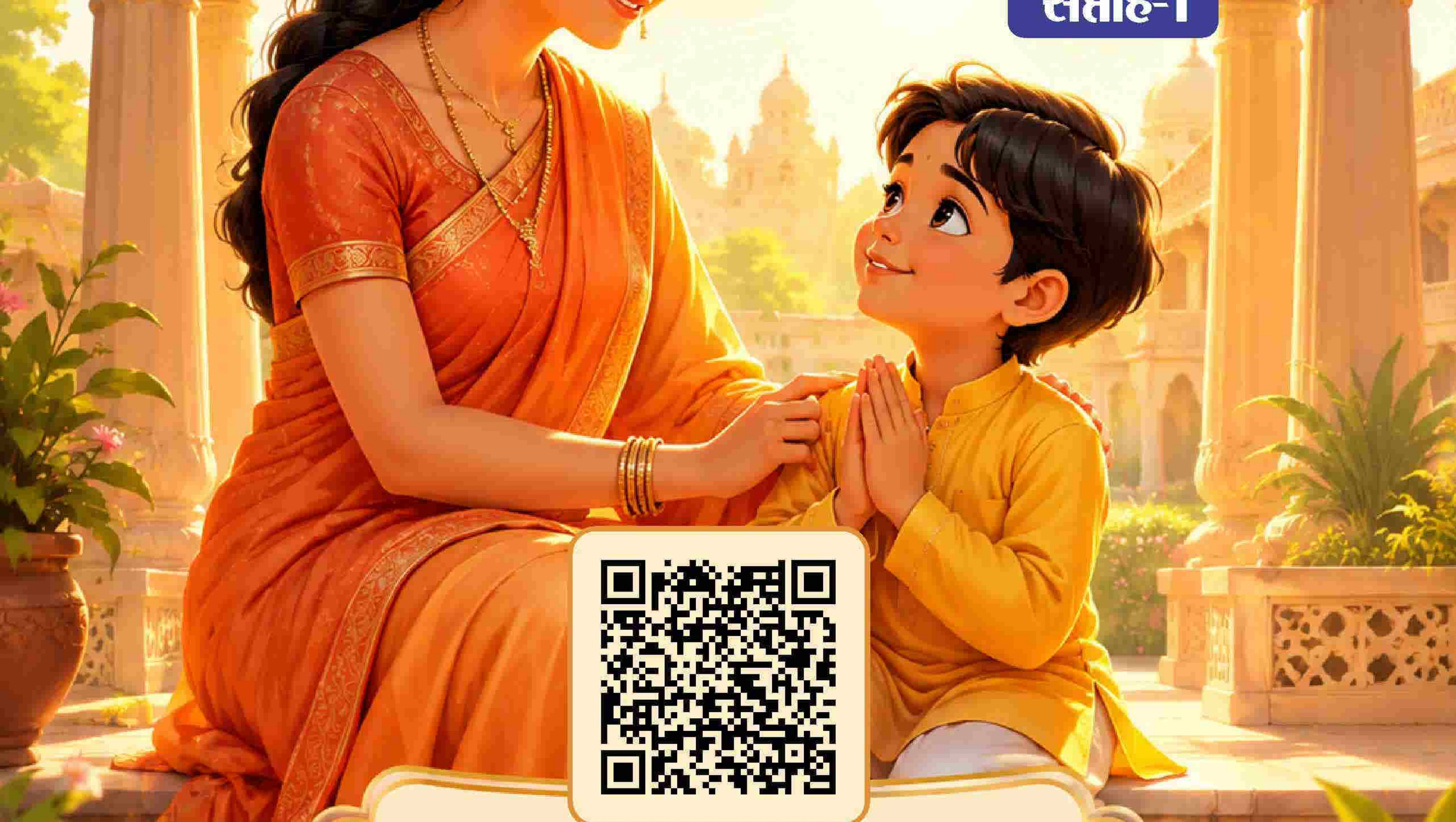

मानवीय मूल्य

आज्ञापालन

Online पढ़ने हेतु QR कोड स्कैन करें।

• मानवीय मूल्य • वेदवाक्य • पहेली / मुहावरे • कहानी • मनोवैज्ञानिक समाधान
• मूल्यपरक कविता / गीत / लोरी • अभ्यास के बिन्दु

शान्तिकुञ्ज-हरिद्वार

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं
भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्

उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुखस्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी,
पापनाशक, देवस्वरूप, परमात्मा को हम अपने अंतःकरण में धारण करें।
वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग पर प्रेरित करे।

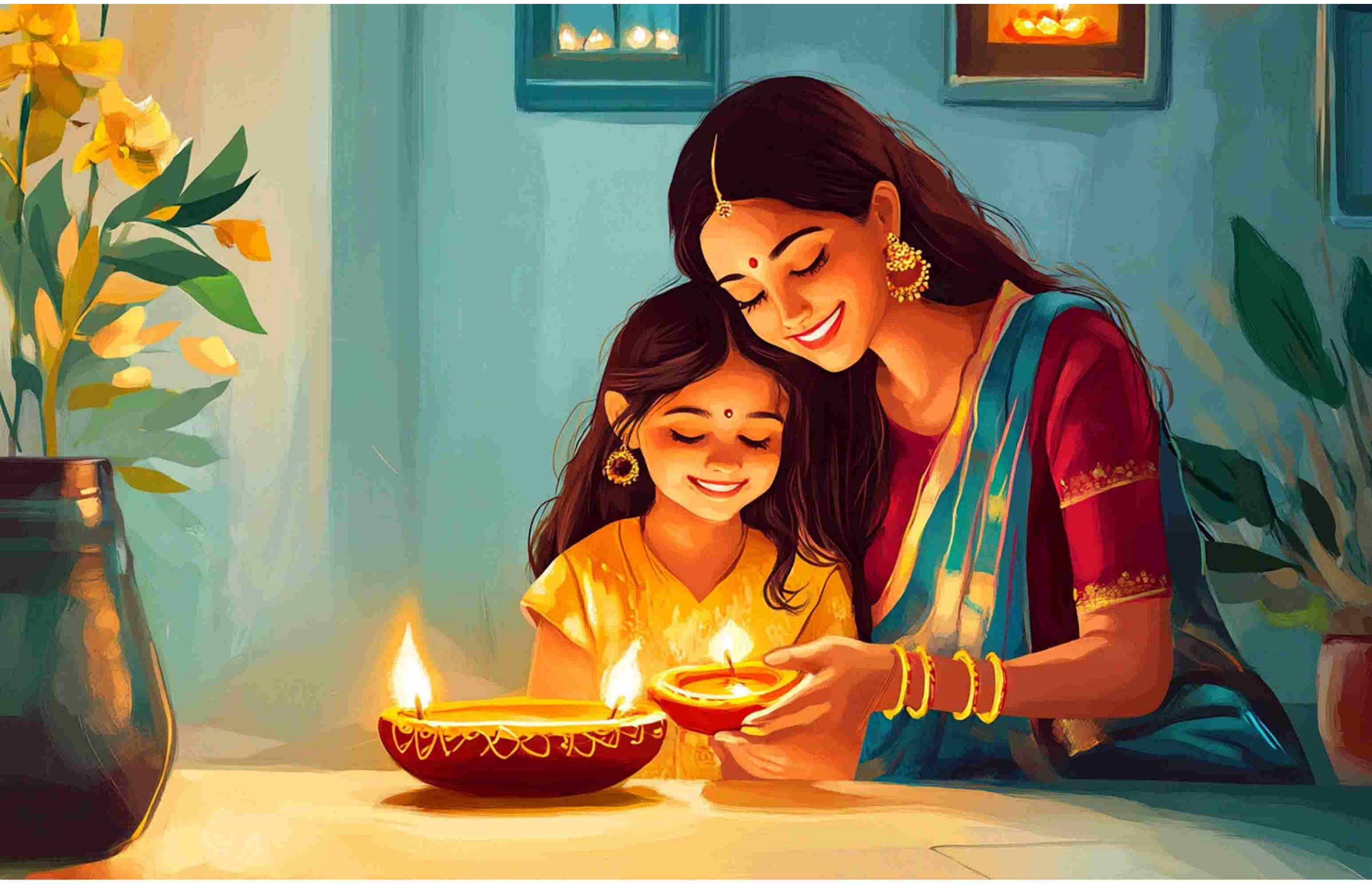

|| गुरुणामेव सर्वेषां माता गुरुतरा स्मृता ||

(सब गुरुओं में माता को सर्वश्रेष्ठ गुरु माना गया है।)

परम वंदनीया माता जी एवं अखंड ज्योति के शताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में " माँ की संस्कारशाला " सप्ताहिक पाठ्यक्रम आपको प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यंत हर्ष हो रहा है। यह पाठ्यक्रम उन माताओं हेतु तैयार किया गया है, जो अपने बच्चों को सुसंस्कारी बनाना चाहती हैं।

परम् पूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी द्वारा रचित विशाल साहित्य भंडार से एक वर्ष के लिए 365 कहानियाँ, वेद वाक्य, पहेलियाँ,एवं कहावतें, संकलित की गई हैं। इसी प्रकार पूज्यवर के बाल निर्माण साहित्य से एक वर्ष के 52 सप्ताह हेतु 52 मानवीय मूल्य तथा हर सप्ताह बालकों के लालन-पालन में आने वाली समस्याओं के मनोवैज्ञानिक एवं व्यावहारिक समाधान भी चुने गए हैं। माताएं इसका अध्ययन कर प्रतिदिन रात को सोने से पूर्व एक कहानी बच्चों को सुनाएं तथा प्रति सप्ताह एक मानवीय मूल्य का अभ्यास कराएं साथ ही साथ एक दुर्गुण से बचनें की प्रेरणा प्रदान करें। आवश्यकता अनुसार बच्चों को लोरियां कविताएं सुनाएं तथा छोटे-छोटे खेल खिलाएं।

अभ्यास हेतु आवश्यक सुझाव:-

1. माताएं स्वविवेक एवं अपने अनुभव से इस पाठ्यक्रम में विषय वस्तु जोड़ या घटा लें।
2. माँ अपने जीवन में घटित प्रसंग जो प्रस्तुत मूल्य से जुड़ा हो, वह भी बच्चों से साझा करें ।
3. प्रस्तुत पाठ्यक्रम में मानवीय मूल्य एवं मनोवैज्ञानिक समाधान और अभ्यास के बिन्दु माँ के लिए हैं। माँ उन्हें समझें और अपने तथा बच्चे के व्यवहार में उतारने का प्रयास करें।

भूमिका

- डॉ. प्रणव पण्ड्या

बड़ा व्यक्ति हो या बच्चा, जिस वस्तु, विषय या चर्चा में उसका मन लगता है, उस स्थिति को कहते हैं- तन्मयता। यह तन्मयता व्यक्ति के अंतर्जगत पर इतने गंभीर और गहरे प्रभाव डालती है कि उसकी जीवन-दिशा धीरे-धीरे उसी ओर मुड़ने लगती है।

बच्चों के व्यक्तित्व को किसी साँचे में ढालना है तो आवश्यक है कि उनमें उपयुक्त संस्कार डालने से पूर्व संस्कार माध्यमों के प्रति तन्मयता उत्पन्न की जाए। हम देखते हैं, बच्चा किसी गंभीर बात या विषय में रस नहीं लेता, क्योंकि उसकी मानसिक क्षमता इतनी विकसित नहीं होती।

इसलिए बेहतर है कि ऐसा कोई माध्यम अपनाया जाए, जिससे बच्चे को रस भी मिले और संस्कार भी। वह माध्यम है- कथा, कहानियाँ सुनाने का। अब तक हमारे देश में दादी और माताएँ बच्चों को सोते समय कथा कहानियाँ सुनाती आई हैं, पर उनका स्तर कभी-कभी ऐसा बन जाता है कि बच्चों में कोई अच्छी वृत्ति पनपने, अच्छे संस्कार उत्पन्न होने की अपेक्षा अंधविश्वास, भय और अज्ञान ही जड़ें जमाते हैं। बड़े-बड़े इंजीनियर, डॉक्टर या सुशिक्षित लोगों में भी तरह-तरह के अंधविश्वास देखे जाते हैं। इसका कारण यह नहीं है कि उनकी शिक्षा-दीक्षा ठीक प्रकार से न हुई हो अथवा उनमें विचारशीलता का अभाव हो, वरन इसका कारण यह है कि बचपन में अम्मा, दादी से उन्होंने भूत-प्रेतों की, जादू-टोनों की, टोने-टोटकों की जो कहानियाँ सुनी थीं, उनके संस्कार इतनी मजबूती के साथ मानस पर जम गए हैं कि पत्थर की लकीर बन गए हैं।

एक प्रभाव तो यह है, बच्चों को कहानियाँ सुनाने का, जो उन्हें आजीवन भीरु, कायर और अंधश्रद्धालु बनाए रहता है। इसका एक और उजला पक्ष भी है कि बच्चों को अच्छी कहानियाँ सुनाई जाएँ, जिससे उनमें विचारशीलता जागे, अच्छी आस्थाएँ उत्पन्न हों, अच्छी मान्यताएँ जाग्रत हों और आगे चलकर उनका व्यक्तित्व फूल की तरह खिले तथा चंदन की तरह महके।
एक नहीं, ढेरों उदाहरण हैं इस तरह के, जिनमें कि बच्चों को केवल कहानियाँ सुनाकर ही योग्य बनाया गया। आचार्य विष्णु शर्मा की कथा प्रसिद्ध है। उस

राज्य के राजकुमार मंदबुद्धि और अयोग्य थे। राजा को बड़ी चिंता थी कि मेरे बाद इस राज्य का क्या होगा! कई शिक्षक नियुक्त किए गए, पर कोई परिणाम नहीं आया। अंततः विष्णु शर्मा ने अपने ढंग का एक अनूठा ही प्रयोग किया। जानवर पात्रों की कथाएँ सुना सुनाकर राजकुमारों को योग्य और राजनीति में दक्ष बना दिया। उस प्रयोग का विवरण इतिहास में आज भी पंचतंत्र के नाम से मशहूर है।

राम-लक्ष्मण को बाल्यकाल में जब विश्वामित्र अपने आश्रम में ले गए थे तो उनका अधिकांश शिक्षण कहानियों द्वारा ही किया। यहाँ तक कि सीता स्वयंवर के लिए आश्रम से जनकपुर जाते समय मार्ग में पड़ने वाली नदियों, वनों, स्थानों, पर्वतों और खंडहरों तक के अतीत का विवरण कहानी शैली में बताते थे। महर्षि गौतम के उजड़े हुए आश्रम के संबंध में उन्होंने बताया था कि वह आश्रम इंद्र द्वारा गौतम पत्नी अहिल्या को छले जाने के बाद इस दशा को प्राप्त हुआ है।

भगवान बुद्ध के समय में सर्वसाधारण का बौद्धिक विकास इतना नहीं हुआ था कि वे गूढ़ दार्शनिक सिद्धांतों को उसी स्तर की भाषा में समझ सकें। इसलिए जातक कथाएँ ; वार्तालाप, दृष्टांत, उपदेश और कथापद्धति को ही अपनाया गया।

जीजाबाई अपने बेटे शिवाजी को लेकर पूना में अलग रहीं। वे चाहती थीं कि मुगल शासकों की परछाई और संस्कार मेरे बेटे पर न पड़ें, वरन वह हिंदू जाति का मुख उज्ज्वल करने वाला वीर पुरुष बनकर इतिहास में एक देदीप्यमान नक्षत्र के रूप में चमके। इसलिए उन्होंने शिवाजी को बचपन से ही रामायण और महाभारत की वीरतापूर्ण कहानियाँ सुनाना आरंभ किया। फलस्वरूप शिवाजी में स्वदेशभक्ति, स्वातंत्र्य प्रेम, जाति और धर्म के प्रति निष्ठा की भावनाएँ इस कदर जम गई कि वे बचपन से ही ग्वाले जाति के पिछड़े और अशिक्षित, असभ्य बच्चों को संगठित कर युद्ध विद्या का अभ्यास करने लगे।

बच्चों को शिक्षाप्रद कहानियाँ उपलब्ध कराया जाना आवश्यक है। इसके दो ही स्रोत हो सकते हैं एक, माता-पिता द्वारा सुनाई कहानियाँ और दूसरा, बाल साहित्य। प्रश्न उठता है कि बच्चों को कैसी कहानियाँ सुनाएँ ? प्रायः बच्चों को अलौकिक कहानियाँ अधिक पसंद होती हैं, पर आजकल जितनी भी अलौकिक कहानियाँ मिलती हैं. वे तो परियों, दानवों, भूत प्रेतों और जादू टोनों से ज्यादा संबंध रखती हैं।

इस तरह की कथाएँ भी बच्चों के लिए बे-मतलब की होती हैं और उनके अच्छे संस्कार नहीं पड़ते। परियों, दानवों और राक्षसों की कहानियाँ न सुनाई जाएँ। भले ही वे शिक्षाप्रद हों, पर बच्चे के मन में उनका ऐसा काल्पनिक चित्र बन जाता है और वे उन पात्रों को सचमुच का ही मान लेते हैं। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि इस तरह की कहानियाँ बच्चों के मन में पलायनवाद का भूत भर देती हैं। अलौकिक कहानियों का इतना ही तात्पर्य नहीं है कि उनमें राक्षसों और भूत-प्रेतों की ही भूमिका हो, वरन इनका वास्तविक तात्पर्य है कि कहानी की विषयवस्तु पृथ्वी की ही हो और मनुष्य की असीमित क्षमताओं का प्रकटीकरण करती हो।

कहानियाँ सुनाने का एक ही उद्देश्य है कि एक मनुष्य में जो सद्गुण होने चाहिए, बच्चों में उनके अंकुरण योग्य मानसभूमि बनाई जाए और उसे योग्य नागरिक बनने की दिशा में अग्रसर किया जाए। बच्चों को कहानियाँ सुनाते समय उनके चयन में उपयुक्त सावधानी बरतना आवश्यक है। उस समय माता-पिता अथवा दादी को यह लक्ष्य अपने सामने रखना परम आवश्यक है।

प्रश्न उठता है कि किस उम्र के बच्चों को कहानियाँ सुनानी चाहिए ? प्रायः तीन चार वर्ष के बच्चों का मानसिक विकास इतना हो चुका होता है कि उन्हें हलकी फुलकी बातें समझाई जा सकें। तब से ही कहानियाँ सुनाने का काम आरंभ कर दिया जाए। कहानी पाँच से दस मिनट लंबी हो, ताकि उसमें समाविष्ट की गई बातों को बच्चा अच्छी तरह ग्रहण कर सके। प्रारंभ में प्रतिदिन एक कहानी सुनाने का क्रम ही रखा जाए। बच्चा रुचि लेता दिखाई दे तो कहानियों की संख्या फिर बढ़ाई भी जा सकती।

बच्चे जब बड़े हो जाएँ, स्कूल जाने लगें और पढ़ना- लिखना सीख जाएँ तो उन्हें केवल स्कूली किताबों से चिपटाए न रखा जाए, वरन नैतिक शिक्षा देने वाला बाल साहित्य भी पढ़ाया जाए, पर समस्या यह है कि आजकल स्तरीय बाल साहित्य मिलता कहाँ है। आज किसी भी रोडवेज, रेलवे या बाजार के बुक स्टाल पर चले जाइए, आपको वहाँ रोमांटिक उपन्यास मिल जाएँगे, जासूसी उपन्यास मिल जाएँगे, अर्धनग्न तसवीरों वाली, कुत्सा और वासना भड़काने वाली पत्रिकाएँ मिल

जाएँगी, पर जीवनोपयोगी साहित्य शायद ही कहीं मिले। खेद की बात है कि बाल साहित्य को भी इस बाजारूपन ने भ्रष्ट कर दिया है और प्रेरणाप्रद कथा कहानियों तथा आदर्श महापुरुषों के जीवन चरित्रों की पुस्तकों के लिए भटकते रहना पड़ता है। फिर भी निराश होने की आवश्यकता नहीं है। माँ की संस्कारशाला की कहानियाँ घने अंधकार मे प्रकाश की किरण जैसी सिद्ध होगी ।

लोक शिक्षण में कथा साहित्य का कितना महत्त्व है, यदि इस तथ्य को समझा जा सके तो प्रतीत होगा कि हर परिवार को यह माध्यम अनिवार्य रूप से अपनाना चाहिए। लेखकों, पुस्तक विक्रेताओं और प्रकाशकों का क्षेत्र प्रधान रूप से कथा साहित्य होता है। आधी से अधिक पुस्तकें कथा परक छपती और बिकती हैं। यह लोकरुचि सनातन है। वेद चार ही लिखे जा सके पर पुराण अठारह और उपपुराण अठारह लिखे गए। चारों वेदों में मात्र २० हजार मंत्र हैं पर अकेला महाभारत ही एक लाख श्लोकों का अर्थात चारों वेदों का पाँच गुना है। अन्य कई पुराण भी इतने ही बड़े हैं। संस्कृत में नाटक काव्य आदि कथा साहित्य के अन्य ग्रंथ भी कम नहीं हैं। व्रतांतो के साथ अगणित कथाएँ जुड़ी हुई हैं और वे चावपूर्वक कही-सुनी जाती हैं। वह प्राचीन अभिरुचि अभी भी ज्यों की त्यों बनी हुई है। आज भी कथा-कहानियों का पत्रिकाओं में प्रमुख स्थान रहता है। फिल्में आखिर कहानियों का दृश्य रूप ही तो हैं। नाटक, अभिनय, गीत में प्रायः कथा-प्रसंग ही जुड़े रहते हैं। लोकरुचि इसी क्षेत्र के इर्द-गिर्द उमड़ती-घुमड़ती रहती है।

कथा-क्षेत्र में मध्ययुगीन भटकाव की दो मुख्य दिशाएँ याद रखना और उनसे बचना चाहिए- (१) अस्वस्थ- अवांछित प्रवृत्तियों को उकसाने, बढ़ाने वाली अर्थात डर, मक्कारी, हताशा, खुदगरजी बढ़ाने वाली और होशियारी के नाम पर झूठ, पाखंड, कपट सिखाने वाली कथाएँ। (२) अवास्तविक अविवेकी आस्थाएँ जमाने- बढ़ाने वाली अर्थात भूत-प्रेत, टोना टोटका, चमत्कार पर विश्वास जमाने वाली कथाएँ।

बच्चों के लिए कहानियाँ चुनते या सुनाते समय उनके आयु वर्ग का यह ध्यान तो रखना ही पड़ेगा कि बच्चा अभी शिशु है या किशोर हो गया है ? किंतु प्रत्येक दो वर्ष में उसके लिए कोई विभाजक सीमा रेखा नहीं खींची जानी चाहिए।

कहानियाँ चुनते समय वैविध्य का ध्यान रखना ही चाहिए। साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिए कि इनमें से कुछ कहानियाँ मुख्यतः भावनात्मक हों तो कुछ अन्य मुख्यतः जानकारियाँ देने वाली उपयोगी कथाएँ हों।

बच्चों की कल्पनाशक्ति अत्यधिक उर्वर होती है। साथ ही उनके दिमाग पर जानकारी का ज्यादा बोझ डालना भी अनावश्यक होता है। इसलिए प्रारंभ में उनकी कल्पना और भावना को उकसाने वाली तथा तुष्ट करने वाली कहानियाँ ही सुनानी चाहिए। बच्चे की कल्पना में चिड़ियों द्वारा आदमी की बोली बोलना, यहाँ तक कि फूलों, नदी-पर्वतों, चाँद- तारों से बातें करना, हवा में उड़ने वाली परी की कल्पना करना और स्वयं को भी हवा में उड़ने में समर्थ मानना- यह सब नितांत स्वाभाविक है। अपनी परिचित वस्तुओं और परिचित क्रियाओं से जुड़ सकने वाला कल्पना विस्तार शिशु को भाता तो है ही, उसे याद भी अपेक्षाकृत शीघ्र हो जाता है। बच्चों को याद कराए जाने वाले गीतों के बारे में भी यही बात ध्यान में रखनी चाहिए। 'चुग-चुग करती आई चिड़िया, दाल खजाना लाई चिड़िया' अथवा 'बड़ी भली है अम्मा मेरी, मुझको दूध पिलाती है' जैसी पंक्तियाँ उसे भीतर तक छू जाती हैं। वह खिल उठता है। 'देश की रक्षा कौन करेगा? वह हम करेंगे, हम करेंगे' जैसे उद्घोष ३-४ साल का शिशु भी झट याद कर लेगा, क्योंकि 'हम करेंगे' में उसके आत्मप्रदर्शन की आकांक्षा तृप्त होती है और इसी के सहारे वह देश से भी भावनात्मक रूप से जुड़ सकता है। उसके अनुभवों से जुड़ी कल्पना को फैलाना तो उसे भाएगा ही, परंतु भारतमाता का वह लाल कैसे है, समझ नहीं सकता। हाँ, भारतमाता की कोई प्रतीक- प्रतिमा या प्रतीक-चित्र (नारी मूर्ति) उसे दिखाकर फिर कहा जाए कि भारतमाता यह कह रही थीं, भारतमाता ऐसी हैं आदि तो वह कल्पना कर सकता है। चोर या डाकू की कहानियाँ भी शिशु को नहीं सुनानी चाहिए। ये किशोरों को सुनाई जा सकती हैं। परियों, पशुओं, पक्षियों और परिचित वस्तुओं की कल्पनापरक उत्साहवर्द्धक कहानियाँ शिशुओं को सुनाना उपयोगी होता है। जो कहानियाँ जानकारी बढ़ाने के लिए हों, उनमें आवृत्तियाँ होनी चाहिए अर्थात सरल, रोचक ढंग से तरह-तरह से एक ही बात बार-बार कहनी चाहिए; जैसे- 'हम क्या हैं?' हम बंदर नहीं हैं। हम शेर नहीं हैं। हम मछली भी नहीं हैं और कुत्ता ? हम कुत्ता भी नहीं हैं। कोई पेड़ भी नहीं हैं हम। हम तो आदमी हैं।' यह शैली छोटे बच्चे के लिए उपयुक्त है।

लोरियाँ बच्चों को बहुत भाती हैं। उनमें आवृत्तियाँ भी होती हैं और चंदामामा, खीर, कटोरी, दूध, मलाई, परियों जैसी उनकी परिचित वस्तुओं का ही मनभावन वर्णन होता है। ये लय-तालयुक्त ढंग से गाई जाती हैं, अतः बच्चों को लोरियाँ गहराई तक छू जाती हैं और मीठी पुलक से भर देती हैं।

नन्हें-मुन्नों के शिक्षण के लिए लोककथाएँ भी बहुत उपयोगी हैं, किंतु उनमें से डर पैदा करने वाली, भूत-पलीदों, जंतर-मंतर, टोना टोटका पर विश्वास बढ़ाने वाली कथाएँ न चुनकर परिचित चिड़ियों, जानवरों आदि की कथाएँ चुननी और सुनानी चाहिए।

दूसरे, आजकल बाजारों में आयु वर्ग के आधार पर वर्गीकृत पुस्तकें बहुत बिकती हैं। शिक्षित माता-पिता इन्हें खरीद पढ़कर यह भ्रांति पाल सकते हैं कि अमुक आयु के किशोर को अमुक ढंग की ही कहानियाँ सुनानी चाहिए । यह एक नकली विभाजन है और इसका शोर व्यापारिक कारणों से अधिक मचाया जाता है। एक तो प्रत्येक बच्चे की बौद्धिक तीक्ष्णता भिन्न-भिन्न होती है, कोई एक किशोर या किशोरी ८-९ वर्ष की उम्र में इतना जान-समझ सकती है, जितना दूसरे १२-१३ वर्ष की उम्र में। यह तथ्य भी स्मरणीय है कि आज दुनिया भर में जो बाल साहित्य की मानक पुस्तकें मानी जाती हैं, जैसे पंचतंत्र, हितोपदेश, जातक कथाएँ, वेताल- पच्चीसी या कि 'एलिस इन दि वंडरलैंड' आदि । ये वस्तुतः बड़ों के लिए लिखी गई पुस्तकें हैं, तो भी वे बच्चों के शिक्षण का सर्वोत्तम माध्यम हैं। तुलसीदास या सूरदास के कई पद, जो चौथी-पाँचवीं के बच्चों को आनंद देते हैं, वही बी० ए०, एम० ए० के छात्रों को भी। किशोर बच्चों को सुनाई जाने वाली एक-सी कहानियाँ, ८ वर्ष के किशोर को अलग ढंग के भाव से, १० वर्ष वाले को भिन्न तथा १२ से १४ वर्ष वाले को किसी अन्य भाव से उल्लसित, आनंदित कर सकती हैं। इसलिए आयु सीमा के विभाजन के फेर में माथापच्ची करने के बजाय प्रेरक, ज्ञानवर्द्धक, सुरुचिपूर्ण, मनोरंजक कथाएँ उन्हें सुनानी चाहिए।

कहानी सुनने के साथ ही बच्चों को कहानी कहने का भी शौक होता है। उन्हें इसके लिए प्रेरित करना चाहिए। शिशु तो अपनी अनुकरणवृत्ति से ही कहानी सुनाते हैं, पर किशोरों में विकसित कल्पनाशक्ति होती है। इसलिए उन्हें ऐसी कहानियाँ सुनाना अधिक अच्छा लगता है, जिन्हें वे अपनी कल्पनाशक्ति से थोड़ी भिन्नता के साथ कह सकें। इसके लिए कहानियों का अंत इस प्रकार किया जा सकता है कि वे 'आगे क्या हुआ होगा?' इसकी कल्पना कर उड़ानें भरते रहें या फिर प्रारंभ इस प्रकार रखा जा सकता है कि उसे कई रूप दिए जा सकें।

लोककथाओं में वे कहानियाँ बड़ी मार्मिक होती हैं, जो मैना, तोता, कौआ, कोयल तथा परिचित चिड़ियों या कुत्ता- बिल्ली, गाय-बैल, भैंस बकरी, घोड़ा हाथी, ऊँट आदि सुपरिचित पशुओं की बोली और रहन सहन के मनोरंजक अर्थ गढ़कर कही जाती हैं। जैसे भोर में बोलने वाली एक चिड़िया को यह बताना कि वह रोज अपने चिड़ा को जगाती हुई कह रही है- 'ठाकुर जी, उठो' आदि । पंचतंत्र और हितोपदेश की कथाएँ तथा उसी तर्ज पर रची गई प्रचलित लोककथाएँ बच्चों का मनोरंजन एवं भाव-परिष्कार उत्तम रीति से करने में समर्थ होती हैं। उन्हें प्रत्येक कहानी के बाद उनका निष्कर्षपरक शिक्षण भी स्पष्ट कर देना चाहिए।

ऐतिहासिक स्थानों से जुड़ी रोचक कथाएँ तथा महापुरुषों की जीवनियाँ अधिक उम्र के किशारों के लिए बहुत प्रेरक एवं उपयुक्त होती हैं।

प्रत्येक स्थिति में यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि कहानी का बच्चे पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? वह उसका आत्मबल बढ़ाएगी या घटाएगी ? विवेक पर बल दे रही है या अंध- विश्वास पर भरोसा जमा रही है? मनोरंजन के साथ संस्कार- संवर्द्धन की क्षमता कहानी में होना आवश्यक है।

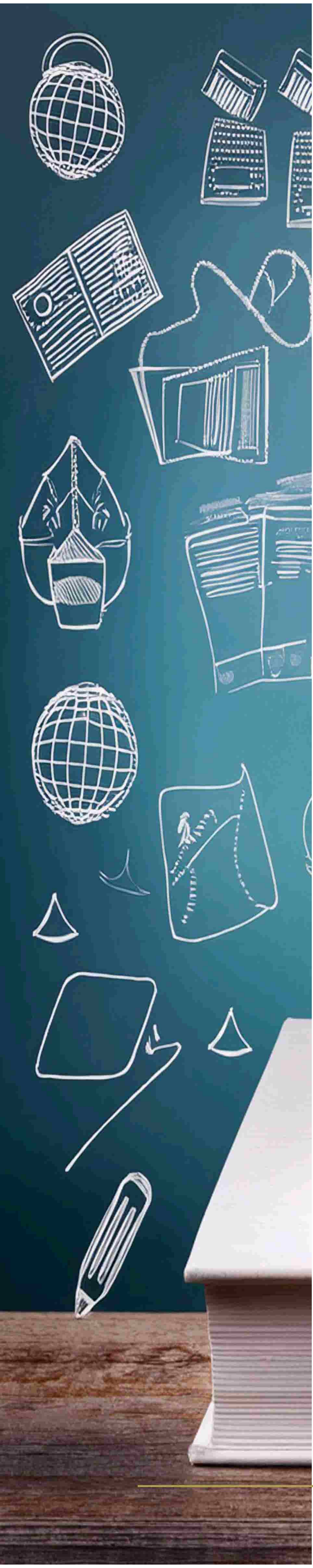

विषय सूची - प्रथम सप्ताह

प्रथम सप्ताह :
मानवीय मूल्य - आज्ञापालन 12

माँ से निवेदन 13

बच्चों को अधिक आदेश न दें 14

प्रथम दिवस :
कहानी : गुरु आज्ञापालन ने उत्तराधिकारी बनाया 18

द्वितीय दिवस :
कहानी : अवज्ञा बनी मौत का कारण 19

तृतीय दिवस :
कहानी : सबक 20

चतुर्थ दिवस :
कहानी : आज्ञापालन से बची जान 22

बच्चों की समस्याओं के मनोवैज्ञानिक एवं व्यावहारिक समाधान :
बच्चों को आज्ञाकारी कैसे बनायें 24

पंचम दिवस :
कहानी : आज्ञाकारी बालक 26

षष्ठम दिवस :
कहानी : हठ का फल 28

सप्तम दिवस :
कहानी : माँ से सीख 30

मूल्यपरक कविता :
श्रवण कुमार 33

गीत :
बड़ों का सम्मान 32

अभ्यास के बिन्दु 34

प्रथम सप्ताह

मानवीय मूल्य

आज्ञापालन

माँ से निवेदन

माता-पिता अपनी संतान से यह अपेक्षा करते हैं कि वह उनकी आज्ञाओं का पालन करे। आज्ञाकारी संतान की अपेक्षा सभी अभिभावक रखते हैं और बच्चे भी सहज श्रद्धावश अपने माता-पिता का कहना मानते हैं। बच्चों के लिए इस संसार के लगभग सभी अनुभव नए और पहले ही होते हैं। उनके कारण बच्चों को कोई हानि न हो, उनमें कोई ऐसे दोष-दुर्गुण न आ जाएँ, जिनके कारण वे कुमार्गगामी बन जाएँ, इसके लिए अभिभावकों द्वारा बच्चों का मार्गदर्शन भी किया जाना आवश्यक है। इस संबंध में यदि कतिपय सावधानियों और सतर्कताओं का ध्यान रखा जाए तो बच्चों में आज्ञाकारिता के साथ-साथ अनुशासननिष्ठा, मर्यादापरायणता और बड़ों के प्रति सम्मान की भावनाएँ विकसित होती हैं, किंतु कई बार अभिभावक अपने बच्चों को बात-बात में आज्ञाएँ देकर उनके व्यक्तित्व को स्वतंत्र रूप से विकसित होने में बाधाएँ खड़ी कर देते हैं। स्कूल के किसी कार्यक्रम में भाग लेना हो अथवा खेल-कूद में प्रतियोगी बनकर हिस्सा लेना हो, तब भी वे अपने माता-पिता की अनुमति से ही कोई निर्णय ले पाते हैं। देखने-सुनने में यह एक छोटी- सी बात है, पर स्वतंत्र निर्णय लेने की क्षमता का अभाव उनके व्यक्तित्व में एक कमजोरी बनकर बैठ चुका होता है और यह कमजोरी अभिभावकों द्वारा उन पर किए कठोर नियंत्रण, कठोर शासन के फलस्वरूप ही आती है।

बच्चों को केवल आज्ञाकारी बनाने पर ही ध्यान केंद्रित नहीं रखना चाहिए, वरन उनमें स्वयं इतनी सूझ-बूझ उत्पन्न करनी चाहिए कि वे आत्मविश्वासपूर्वक कोई निर्णय कर सकें और न ही उनसे ऐसा व्यवहार करना चाहिए कि उनमें किसी प्रकार की हीनता का भाव आए।

बच्चों को अधिक आदेश न दें

\- शैलबाला पण्ड्या

प्रायः बच्चे इसलिये अवज्ञाकारी बन जाते हैं कि हम उन्हें अत्यधिक आज्ञाकारी बनाना चाहते हैं। यदि बच्चों को दी जाने वाली आज्ञाओं की केवल एक वर्ष की सूची बनाई जावे, तो वह इतनी बड़ी होगी, जितनी बड़ी शायद कानून की सब किताबें भी न हों।

उन्हें उठते-बैठते, चलते-फिरते, खाते-पीते, खेलते-कूदते हर समय आज्ञा ही देते रहते हैं और यह भी चाहते हैं कि वह उन सब आज्ञाओं का अक्षरशः पालन भी करे। हमारा यह भाव इतना बढ़ जाता है, कि यदि, सौ आज्ञाओं में से बच्चे ने किसी परिस्थितिवश एक की भी अवज्ञा कर दी, कि बस हम आपे से बाहर हो जाते हैं, उसे न जाने कितनी उपाधियां दे डालते हैं, और अवज्ञाकारी मानकर, उसके प्रति निराश होकर एक अशान्ति पनपा लेते हैं।

हमने बच्चों के अच्छे बुरे होने का मापदण्ड केवल अपनी आज्ञाकारिता ही बना लिया है। जो बच्चा कोई भी आज्ञा पाने पर तत्काल उसका पालन करता है, वह तो बड़ा अच्छा, लायक और होनहार है, और जो ऐसा नहीं कर पाता, वह मानो बिल्कुल निकम्मा और नालायक है। हमारी आज्ञा पालन होनी ही चाहिये, फिर चाहे वह उसके अनुकूल हो या प्रतिकूल। मनुष्य को आज्ञा चलाने और उसको पूरा होते देखने की बड़ी चाह होती है। इससे उसके अहं को बड़ा सन्तोष मिलता है। इसलिये बहुधा देखने में आता है कि जो बच्चा अधिक आज्ञानुवर्ती रहता है, वह अन्य बच्चों से अधिक प्यारा होता है। उसका ध्यान भी बहुत रखा जाता है। उसे चीज और पैसे भी अधिक मिल जाते हैं। उसके दोषों की उपेक्षा कर दी जाती है, और एक तरह से वह अन्य बच्चों का मानीटर मान लिया जाता है, और जो बच्चे कम आज्ञानुवर्ती रह पाते हैं वे बेचारे इन सब बातों से वंचित रह जाते हैं।

बच्चा तो बच्चा, आज्ञाकारी पशुओं तक को विशेषता मिलने लगती है। जो पशु आज्ञानुसार परिचालित होते हैं उन्हें हम बहुत चाहने लगते हैं। अपने हाथ से खिलाते-पिलाते और नहलाते तक हैं। कोई नुकसान कर देने पर उन्हें क्षमा कर देते हैं। उसे मारने पर बच्चों तक को डांटने-फटकारने लगते हैं। उसकी उपेक्षा करने पर घर वालों पर नाराज हो उठते हैं इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि किसी

को आज्ञानुवर्ती रखने की हमें कितनी उत्सुकता रहती है।

हमें बच्चों अथवा अपने अधीनस्थों पर आज्ञा चलाने का अधिक अवसर रहता है। इसलिये हम अपने इस अहं को सन्तुष्ट करने में उनको ही लक्ष्य बना लेते हैं। चूंकि बच्चे छोटे भी होते हैं, हमारा जन्मजात उन पर अधिकार भी होता है और हर समय उपलब्ध भी रहते हैं, इसलिये वे ही हमारे इस अहं के सबसे अधिक वाहक बनते हैं।

प्रारम्भिक आज्ञाओं में भी अनुभव किया जा सकता है, कि जिन आज्ञाओं को हम, प्यार का द्योतक और बच्चे के प्रशिक्षण की विधि समझते हैं, उसमें भी हमारा अहं किस सीमा तक निहित रहता है। यदि हमारे एक बार कहने से अपनी मौजवश वह हाथ नहीं उठाता या नहीं करता तो हम जहां तक संभव होता है, बार-बार कहकर, प्यार से पुचकार कर, खुद करके दिखलाकर, वैसा कराकर ही पीछा छोड़ते हैं और यदि बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी वह वैसा नहीं करता तो हम में एक खिन्नता का कुछ न कुछ भाव आ जाता है, और हम उसे प्यार से गाल पर या पीठ पर थपथपा कर स्नेह का पुट देते हुए कोई न कोई उपाधि दे देते हैं, जैसे, 'बड़ा बदमाश' 'बड़ा मनमौजी' आदि किन्तु यह बात माननी पड़ेगी कि उसकी उस अवज्ञानुकारिता से हमें कुछ न कुछ अरुचिकर निराशा अवश्य होती है।

जब गोद के अबोध शिशुओं के सम्बन्ध में हमारी यह दशा है, जो बच्चे सयाने होते हैं उनकी मन-मौज को सहन कर सकना कहां तक हमारे वश की बात होगी?

बहुत कुछ स्वाभाविक होने पर भी यह अहंभाव श्रेयस्कर नहीं है। क्योंकि इसकी अतिरेकता बच्चों और अभिभावकों के बीच, प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में तनाव उत्पन्न कर देती है। अस्तु एक ओर आज्ञाओं की वृद्धि और दूसरी ओर स्वच्छन्द बुद्धि के विकास में संघर्ष बचाने के लिये अभिभावकों को, बच्चों को प्रत्येक परिस्थिति में, एक लकड़ी से हांकने का हठ न करना चाहिये।

बहुधा देखने में आया है कि कोई काम करते वक्त अभिभावक बच्चों से सेवक की तरह काम लेते हैं। जरा वह उठाना, यह उधर रखना, इसे हटाना, वहां चले जाना, माँ को बुलाना, पानी लाना, यह कर देना, वह कर देना आदि–आदेशों का एक सिलसिला लगा देते हैं।

बहुत बार तो बच्चे से एक काम छुड़वा कर दूसरी आज्ञा दे दी जाती है। पढ़ने से उठाकर काम के लिए दौड़ाया जाता है, खेलने से बुलाकर सेवा ली जाती है। यही नहीं कि कोई एक व्यक्ति ही आज्ञा चलाता हो, उसे उससे जो भी बड़े व्यक्ति होते हैं समान रूप से आज्ञाकारी रखना चाहते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अभी पिता की आज्ञा का पालन हो ही रहा था कि माता का आदेश हो गया। माता का आदेश पूरा नहीं हुआ कि बड़ी बहन या भाई ने कुछ काम बता दिया। कभी-कभी बहुत से लोग एक साथ काम बतला देते हैं। तो या तो बेचारा, सब का काम सबकी इच्छानुसार कर नहीं पाता, या कुछ न कुछ बिगड़ जाता है, जिससे उसे अनेकों का कोप भाजन बनना पड़ता है।

कभी-कभी कुछ काम बिना कोई निर्देश दिये आदेशित कर दिये जाते हैं जैसे–यह पुस्तकें अलमारी में रख दो, या अमुक वस्तु को अनेक वस्तुओं से स्थानांतरित कर दो और जब वह काम उनकी इच्छा से साम्य नहीं खाता तो उसे कम अक्ल या बेशऊर होने की अनेक, उपाधियां दे डाली जाती हैं। बहुत बार ऐसी भ्रामक और विपरीत आज्ञाएँ भी दी जाती हैं, जिनका ठीक-ठीक पालन कर सकना उसके लिये सर्वथा कठिन होता है। जैसे–वहां चले जाना, अमुक से यह कहना, और यदि वह यह उत्तर दे तो यह नहीं तो यह बात कहना, और फिर जो कुछ वह कहे वह अमुक से बतलाकर, उसका जवाब अपनी माता या मुझे बतलाना आकर। अथवा आज तुम खेलने बिल्कुल नहीं जाओगे और अगर जाओ तो थोड़ा बहुत खेल कर अपने घर आ जाना। कभी-कभी माता व पिता की परस्पर विरोधी आज्ञाओं से असमंजस में पड़ जाता है, जैसे पिता का आदेश है अमुक व्यक्ति के यहां कतई न जाया करो मां का कहना है कि जब उनके बच्चे आते हैं तो इसके जाने में क्या हर्ज है, कभी-कभी हो आया करो, बेटे।

कभी-कभी उसे माता की इस स्पर्धा के बीच फंसना पड़ता है कि देखें बच्चा किसकी बात अधिक मानता है। पिता कहता है अंग्रेजी की कहानी सुनाओ, माँ कहती है हिन्दी की कविता, वह बेचारा उन दोनों का मुंह ताकता हुआ असमंजस में पड़ जाता है कि किसकी बात मानें किसकी न मानें। एक की बात मानने से

दूसरा नाराज होगा और यदि किसी की बात नहीं मानता तो दोनों की नाराजगी उठानी पड़ती है। निदान उसे एक को निराश करना ही पड़ता है। चूंकि बच्चा इतना चतुर तो होता नहीं कि दोनों की आशा निराशा में संतुलन बनाये रखे, फलस्वरूप एक का पलड़ा भारी होने से दूसरे की दृष्टि में गिरने लगता है । यद्यपि, इस प्रकार की स्पर्धायें पारिवारिक मनोरंजन के अन्तर्गत आती हैं तथापि इनकी बहुतायत ठीक नहीं। इससे मन मुटाव की आशंका रहती है।

कभी-कभी अधिक आज्ञाएँ गुरुजनों के बीच कलह का कारण बन जाती हैं जैसे, एक के अधिक आज्ञाएं देने पर दूसरा तरस खाकर टोक भर देता है, कि बस टोके हुये का नपा-तुला उत्तर बाहर आया नहीं, आप चाहते या चाहती ही हैं, कि वह न तो मेरी कोई बात माने और न कोई काम करे, मेरा उस पर अधिकार ही क्या है, बच्चा तो आपका है ना बस-क्रिया प्रतिक्रियाओं का जन्म और कलह का प्रारम्भ और फिर थोड़ी देर बाद घूम फिर कर बच्चे पर ही आ पड़ती है, कि इसके कारण न जाने क्या–क्या सुनना पड़ता है? बेचारा निरपराध अपराधी बन जाता है ।

बहुत सम्पन्न परिवारों की तो बात नहीं कही जा सकती किन्तु जहां साधारणतः नौकर उपलब्ध नहीं रहते, वहां एक प्रकार से उनकी पूर्ति बच्चों से ही की जाती है। यदि बच्चों के काम और उन पर होने वाले खर्च का अनुपात लगाया जाये तो शायद ही उन पर होने वाला खर्च अधिक बैठे ।

इस प्रकार हर समय उसको क्षण-क्षण पर आज्ञानुवर्ती बनाये रखना ठीक नहीं। कभी किसी कारण से उसका मन कोई काम न करने का भी हो सकता है। बच्चा ही है, अपनी किसी धुन में अनसुनी भी कर सकता है और तब आप अपनी अवज्ञा समझ कर खीझ उठेंगे।

किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है, कि बच्चे को कोई आज्ञा न दी जावे और न उससे कोई काम लिया जावे। कहना केवल यह है कि आज्ञाओं का तारतम्य कुछ कम करके उनका रुख बदल दिया जावे और अहं के स्थान पर कुछ नरमाई को संयोजित किया जावे। उसे अपना सहायक और सहयोगी तो बनाइये किन्तु एक मात्र नौकरों की तरह सेवक न बनाइये। सेवक तो वह स्वयं आपका बनेगा ही आप स्वयं अपनी ओर से उसको इस स्थिति पर न मानिये। आशय यह कि सहायक और सहयोगी तो बनाना आपका अपना अधिकार है, और सेवक बनना उसकी अपनी श्रद्धा का विषय है। यदि आपको उसे आज्ञाकारी सेवक देखने से ही संतोष और पितृत्व गौरव अनुभव होता है तो उसे अधिक श्रद्धालु बनने का अवसर दीजिये केवल पालन पोषण की कीमत पर उसे सेवक मानने का विनिमयन भाव प्रशंसनीय नहीं है। यह एक ओछी और अहितकर भावना है इसका आभास मात्र अनुभव हो जाने से बच्चा आजीवन आपको उस श्रद्धा की दृष्टि से न देख पायेगा जिससे उसे देखना चाहिये। क्योंकि इस प्रकार के भावानुबन्ध में पिता पुत्र का सम्बन्ध न रह कर स्वामी सेवक का सम्बन्ध हो जाता है। जो शायद किसी को भी रुचिकर न हो। अस्तु, उसे अश्रद्धालु होकर कर्त्तव्य से गिरने और स्वयं उसकी श्रद्धा से वंचित होने का अवसर न आने दीजिये। कोई बच्चा श्रद्धा लेकर पैदा नहीं होता। वह माता पिता की कृपा, कष्ट, करुणा और कोमलता से बच्चे के हृदय में जन्म पाकर दिनों दिन स्निग्ध और स्नेहिल व्यवहार से बढ़ कर एक दिन पूर्ण हो जाती है।

अब प्रश्न यह है कि ऐसी कौन-सी आज्ञाएँ हैं जो कम कर दी जावें और उनका रुख किस प्रकार बदला जावे–इसका एक छोटा सा उत्तर है–कि केवल उसको उस समय वह आज्ञा दीजिये, जिस समय वह किसी अपने काम में निमग्न न हो और जो उसके करने योग्य हो और उससे कराये बिना कुछ हर्ज होता हो। केवल आलस्य आरामतलबी अथवा अनावश्यक अधिकार तुष्टि के लिए आज्ञाएँ न दीजिये। जैसे खाना आप खाने जा रहे हैं–पानी बच्चा रखेगा, नहा आप रहे हैं धोती बच्चा लायेगा, कपड़े आप उतारेंगे टांगेगा बच्चा, बाजार आप चलेंगे सामान वह उठाएगा, लौटते समय आप खाली हाँथ हो और सामान उस पर आदि ऐसी बातें हैं जो बच्चों से करवाने में शोभा नहीं देतीं। बहुत से अभिभावकों को कोई एक काम एक बार में पूरा ही नहीं होता। कारण यह है कि उन्हें बच्चे को बार-बार दौड़ाने में कुछ लगता तो है ही नहीं फिर क्या जरूरत है कि काम सोचकर इस ढंग से बताया जाये कि वह एक बार में पूरा हो जाये–जैसे पानी ले आओ वह एक लोटे में पानी ले आया। वाह तुम भी अजीब आदमी हो, तुम्हें मालूम नहीं पानी पियेंगे गिलास में गिलास लाना चाहिये था जाओ लोटा ले जाओ और गिलास में लेकर आओ। जब वह गिलास में लेकर आया तो थोड़ा और ले आओ प्यास बुझी नहीं। यही एक काम ठीक प्रकार से बतलाने से एक बार में ही पूरा हो

सकता था और बच्चा बार बार की कवायद से बच जाता जैसे-''पीने के लिये एक बड़े गिलास में पानी ले आओ'' । इस प्रकार दिन में अनेकों बार ऐसी बातें होती रहती हैं और आखिर बच्चा ऊबकर कह ही बैठता है आप तो बार बार दौड़ाते हैं। देखने में तो यह बातें बहुत छोटी मालूम होती हैं किन्तु धीरे-धीरे बच्चे की मनोवृत्तियों पर जो इसका अनदिख प्रभाव संचित होता है उसका बहुत महत्व है ।

आज्ञाओं का रुख बदलने का अर्थ है—सीधे सीधे आदेश की भाषा में न कहना—जैसे—''पानी ले आओ, वहां चले जाओ, यहां आओ, खेलने मत जाना'' । इन्हीं बातों को इस प्रकार कहने में शायद कोई हर्ज नहीं है - क्या आप पानी पिलायेंगे, क्या वहां चले जाओगे, ज्यादा खेलना ठीक नहीं होता । इस प्रकार बात का थोड़ा सा रुख बदल देने से बच्चा सहर्ष वह काम करने को प्रेरित होगा। इनकार तो किसी दशा में कर ही नहीं सकता।

नरमाई रखने का अर्थ है—यदि किसी समय किसी कारण से कोई बात अनसुनी कर देता है तो उसे अपने मान और बड़प्पन का प्रश्न बनाकर बहुत बुरा न मानिये, अपितु उसके कारण की खोज कीजिये और कहिये—क्या बात हो गई बेटे जो तुमने मेरी बात ही सुनना छोड़ दी। इससे वह लज्जित हो जायेगा और भविष्य में आपको ऐसा कहने का मौका न देगा।

इन सब बातों से किसी को यह आभास हो सकता है कि यह तो बच्चे को खुशामद करने और उसे सर चढ़ा कर बिगाड़ देने की बात कही जा रही है किन्तु ऐसी कोई बात नहीं है। यह बातें सिर्फ बच्चों से ऐसा व्यवहार करने की ओर संकेत करती हैं जिनसे कि वे आपकी नैतिक विनम्रता से दबकर ठीक-ठीक विनम्र और आज्ञाकारी बनें। जब हम संसार में सबसे कोमल व्यवहार करना चाहते हैं तो कोई कारण नहीं दीखता कि बच्चों से कर्कश व्यवहार किया जाये। जब कि वे संसार में सब से अधिक कोमलता और स्नेह के अधिकारी हैं।

अस्तु, बच्चों को अधिक से अधिक आज्ञाकारी और विनम्र बनाने के लिये कम से कम आज्ञाएँ दीजिये क्योंकि यह निश्चित है कि जिन बच्चों को जितने कम और सटीक आदेश दिये जाते हैं वे उनके पालन में सदैव उतने ही सहर्ष तत्पर रहते हैं।

"जो बच्चों को सिखाते हैं, उन पर बड़े खुद अमल करें तो यह संसार स्वर्ग बन जाए।"

कहानी
प्रथम दिवस

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः। जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ।।

- अथर्व. ३/३०/२

आदर्श गृहस्थी वह है जिसमें बेटे माता-पिता के आज्ञाकारी हों । माता-पिता बच्चों के हितकारी हो । पति और पत्नी के पारस्परिक सम्बन्ध सुमधुर और सुखदाई हों । ऐसे ही परिवार सदैव फलते-फूलते और सुखी रहते हैं ।

पहेली ?
परिवार हरा भरा, हम भी हरे, एक थैली मे तीन चार भरे। बताओ कौन ?

गुरु-आज्ञापालन ने उत्तराधिकारी बनाया

गुरु नानकदेवजी के बड़े बेटे का नाम श्रीचंद था। एक दिन गुरु नानकदेवजी ने अपने बड़े बेटे को बुलाकर कहा ''बेटा श्रीचंद, आज सेवा की भागदौड़ में मैं गोशाला की सफाई नहीं कर पाया हूँ। केवल उतनी सेवा तुम कर देना !'' श्रीचंद कुछ समय पहले ही स्नान कर बाहर निकला था तथा वह स्वच्छ कपड़े पहने हुए था। श्रीचंद ने अपने मन में सोचा कि यदि मैं गोशाला की सफाई करुंगा, तो मेरे कपड़े मैले हो जायेंगे तथा मुझे फिर से नहाना पड़ेगा। इसलिए, वह सफाई करना टालना चाहता था। उसने कहा, ''पिताजी, मुझे तो मंदिर में जाना है। वहां भलीभांति स्वच्छ होकर ही जाना चाहिए न!'' इतना कहकर वह वहां से चल दिया। तब, गुरु ने अपने लहना नाम के शिष्य को बुलाया और गोशाला की सफाई करने के लिए कहा । उनके शिष्य ने भी कुछ समय पूर्व ही स्नान किया था; किंतु गुरुदेव की आज्ञा का पालन करने के लिए वह तुरन्त गोशाला साफ करने चल दिया। गोशाला स्वच्छ करने के बाद उसने पुन: स्नान किया और मंदिर गया।

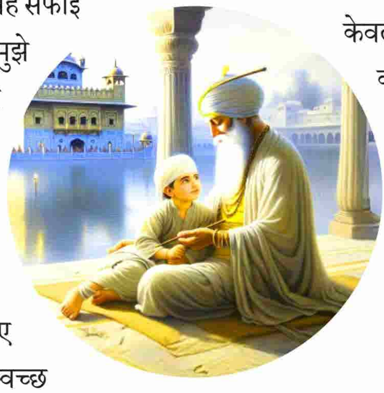

दूसरे ही दिन सिक्खों का बड़ा सम्मेलन था। उस सम्मेलन में सभी के सामने नानकदेवजी ने अपने शिष्य लहना का नाम बदल कर अंगददेव कर दिया तथा अब वह 'अंगददेव' के नाम से पुकारा जाने लगा। गुरुदेव ने उसे गुरुगद्दी का भी उत्तराधिकारी बना दिया। इसपर उनके शिष्य चकित हो गए। शिष्यों ने कहा, ''गुरुसाहेब, आपने अपने बड़े बेटे को उत्तराधिकारी न बनाकर अपने लहना शिष्य को उत्तराधिकारी क्यों बनाया ? इससे क्या आपकी परम्परा नहीं टूटेगी !'' तब गुरु नानकदेव बोले, ''क्योंकि, श्रीचंद की अपेक्षा लहना अर्थात अंगददेव ही उत्तराधिकारी के पद के लिए अधिक योग्य है। केवल दुबारा नहाना पड़ेगा इसलिए गोशाला स्वच्छ करने में टालमटोल करने वाला, समाज को कभी शुद्ध नहीं कर सकता। इसलिए लहना अर्थात अंगददेव ही समाज के लिए योग्य है तथा मेरा उत्तराधिकारी बनने का पात्र भी है। यह बताकर गुरु नानकदेवजी ने उसे गद्दी पर बिठाया।

बच्चों, लेहना अर्थात अंगददेव तुरंत आज्ञापालन करते थे इसलिए गुरु नानकदेवजी ने उन्हें अपना उत्तराधिकारी बनाया। इस कहानी से आपको ध्यान में आया होगा कि स्वयं का विचार न कर आज्ञापालन करना ही योग्य आचरण है।

पहेली का उत्तर - मटर

कहानी
द्वितीय दिवस

न यस्य सातुर्जनितोरवारि न मातरापितरा नू चिदिष्टौ । अधा मित्रो न सुधितः पावको अग्निर्दीदाय मानुषीषु विषु ।।

- ऋ. ४/६/७

जिस पुत्र के विद्यमान रहते हुए भी माता और पिता को दुख मिलता है और सत्कार नहीं होता है वह अभागा सदैव दुःख व पीड़ाएँ ही पाता है । माता-पिता के आशीर्वाद से पुत्र सुखी व चिरंजीवी होते हैं अतः माता-पिता की सेवा करना ही अपना धर्म हो ।

पहेली ?
ऐसा कौन सा फल है जिसके पेट में दाँत होते है ?

अवज्ञा बनी मौत का कारण

व्यापारी को उस छोटे ऊँट से बहुत प्रेम था इसलिए उसने उसके गले में घंटी बाँध रखी थी। जब भी वह सिर हिलाता तो उसकी घंटी बजती थी जिससे उसकी चाल एवं स्थिति का पता चल जाता था।

एक बार उस स्थान से एक शेर गुजरा जहाँ ऊँट चर रहे थे। उसे ऊँट की घंटी के द्वारा उनके होने का पता चल गया था। उसने फसल में से झांककर देखा तो उसे ज्ञात हुआ कि ऊँट का बड़ा समूह है लेकिन वह ऊँटों पर हमला नहीं कर सकता था क्योंकि समूह में ऊँट उससे बलशाली थे। इस कारण वह मौके की तलाश में वहाँ छुपकर खड़ा हो गया।

समूह के एक बड़े ऊँट को खतरे का आभास हो गया । उसने समूह को गाँव वापस चलने की चेतावनी दी और उन्हें पास पास चलने को कहा। ऊँटों ने एक मंडली बनाकर जंगल से बाहर निकलना आरम्भ कर दिया। शेर ने मौके की तलाश में उनका पीछा करना शुरू कर दिया ।

बड़े ऊँट ने विशेषकर छोटे ऊँट को सावधान किया था। कही वह कोई परेशानी न खड़ी कर दे। पर छोटे ऊँट ने ध्यान नहीं दिया और वह लापरवाही से चलता रहा।

छोटा ऊँट अपनी मस्ती में अन्य ऊँटों से पीछे रह गया। जब शेर ने उसको देखा तो वह उस पर झपट पड़ा। छोटा ऊँट अपनी जान बचाने के लिए इधर – उधर भागा, पर वह अपने आप को उस शेर से बचा नहीं पाया। उसका अंत बुरा हुआ क्योंकि उसने अपने बड़ों की आज्ञा का पालन नहीं किया था।

मित्रों! हमें अपनी भलाई के लिए अपने माता–पिता एवं बड़ों की आज्ञा का पालन करना चाहिए ।

पहेली का उत्तर - अनार

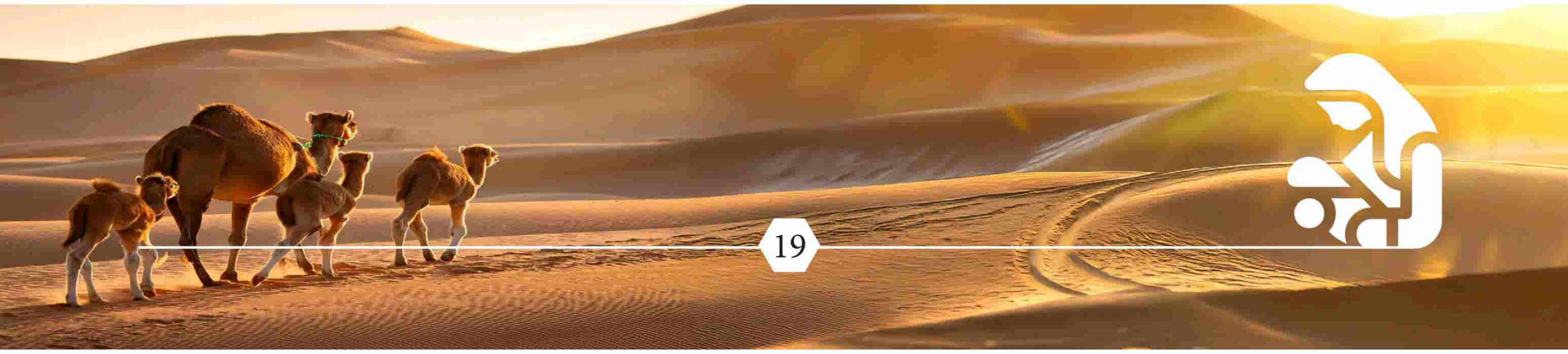

कहानी
तृतीय दिवस

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम् । स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन् ।।

- यजु २/३४

हम जब बालक थे तो माता-पिता ने जिस तरह हमारी सेवा-सुश्रूषा की थी हमें भी अपने माता -पिता की वैसी ही सेवा करनी चाहिए । जो ऐसा नहीं करते उनकी विघा का नाश हो जाता है और वे कृतघ्न कहलाते हैं ।

पहेली ?

मेरी खाल है काँटेदार, पर रसगुल्ला मीठा रसदार हूँ । जो भी खाए, खाना चाहे बार–बार । बताओ वह क्या ?

सबक

अमित के स्टोर की टाँड़ पर सोनी कबूतरी ने अपना घोंसला बनाया था। टाँड़ पर बहुत सा सामान भरा पड़ा था। एक बिस्तरबंद के पीछे, खिड़की के सहारे, सोनी ने कुछ आड़े-तिरछे तिनके रख लिए थे । वहीं उसने दो अंडे दिए । सोनी कबूतरी और मोना कबूतर दोनों बारी-बारी से अंडों की देख-भाल करते ।

थोड़े दिन में ही अंडों से प्यारे-प्यारे दो बच्चे निकले । सोनी और मोना बच्चों को देखकर प्रसन्न होते। धीरे-धीरे वे बच्चे बड़े होने लगे। उनके छोटे-छोटे पंख भी निकल आए। अब उनकी भूख भी बढ़ गई थी, इसलिए सोनी और मोना अधिकतर बाहर रहने लगे। वे सुबह ही खाने की तलाश में निकल जाते। थोड़ी-थोड़ी देर बाद वे अपनी चोंच में खाने-पीने का सामान भरकर लाते। खिड़की के रास्ते से अंदर जाते। दोनों बच्चे अपनी छोटी-छोटी, लाल-लाल आँखें खोलकर देखते। माता-पिता को देखते ही वे खुशी से भर उठते और खुशी से चीं-चीं करके चिल्ला उठते। सोनी या मोना उनकी चोंच में अपनी चोंच से दाना रखते। बच्चे उसे खाने को लपकते । उसके मुँह में दाना रखकर माता-पिता बाहर खाने की तलाश में निकल जाते। क्योंकि बच्चे बड़े हो रहे थे। सोनी और मोना की चोंच में थोड़ा सा खाना आता था । उससे उनका पेट नहीं भरता था । इसलिए उन्हें बार-बार जाना पड़ता था ।

एक दिन की बात है, सोनी और मोना भोजन की तलाश में दूर निकल गए । इधर दोनों बच्चों को भूख लगी । बड़ा बच्चा बोला- 'चलो! आज हम खुद दाना तलाशते हैं।"

छोटा कहने लगा- भैया! माँ कहती है कि अभी हमारे पंख छोटे-छोटे हैं । उन्होंने हम से मना किया है कि यहाँ से कहीं उड़कर न जाएँ।

बड़ा बच्चा कहने लगा-"माँ तो ऐसे ही डरती हैं। वे भी हमें बहुत छोटा समझती हैं। देखो! खिड़की से झाँककर बाहर की दुनिया कितनी सुंदर है। मैं तो खुद आसमान में उड़ानें भरने को आतुर हूँ। चलो ! हम आज बाहर चलें।"

"पर भाई माँ सुनेंगी तो नाराज होंगी, कहेंगी कि तुमने हमारा कहना नहीं माना । मैं तो माँ की आज्ञा का पालन करूँगा । जब तक

वे नहीं कहेंगी, मैं यहाँ से उड़कर कहीं नहीं जाऊँगा।''

''तो ठीक है। मैं आज अकेले ही सैर करके आऊँगा।'' बड़े बच्चे ने कहा। फिर उसने अपने पंख फड़फड़ाए और स्टोर के दरवाजे से बाहर आ निकला।

कबूतर का बच्चा थोड़ी सी ऊँचाई पर कुछ देर ही उड़ पाया। जल्दी ही थक गया। उधर कमरे में अमित और उसके दोस्त भी आ गए। उन्होंने कबूतर के बच्चे को उड़ाया और कमरे में भगाना शुरू कर दिया। एक कमरे से दूसरे कमरे में उड़ते-उड़ते वह तंग आ गया। अब तेजी से वह उड़ भी नहीं पा रहा था। अब उसकी समझ में आ रहा था कि माँ ने घोंसले से बाहर निकलने के लिए क्यों मना किया था।

काफी देर बाद बड़ी मुश्किल से कबूतर का बच्चा स्टोर में आ पाया। वह बच्चों के हुड़दंग से रास्ता भूल गया था। बच्चों ने कपड़ा मार-मारकर स्टोर की ओर भगाया था। उसके अंगों पर कई बार कपड़े की मार भी पड़ चुकी थी। उसके सारे शरीर में दर्द हो रहा था।

जैसे-तैसे कबूतर का बच्चा अपने घोंसले में पहुँचा। सोनी कबूतरी दाना लेकर अब वहाँ पहुँची थी। छोटे बच्चे ने सोनी को सारी बातें बता दीं।

कबूतर के बड़े बच्चे ने घोंसले में माँ को बैठे देखा। शरम के कारण उसकी गरदन झुक गई। उसने माँ का कहना जो नहीं माना था। वह बोला- ''माँ! मैंने नादानी में तुम्हारी आज्ञा का उल्लंघन किया है। आज ठोकर खाकर मेरी समझ में अच्छी तरह आ गया है कि तुम हमारे भले के लिए ही हमें टोकती हो। बहुत से काम करने को मना करती हो। आज मैं बड़ी मुश्किल से अपनी जान बचाकर आया हूँ।''

सोनी कबूतरी ने अपनी चोंच का खाना बड़े बच्चे के मुँह में रखते हुए कहा- '' बेटा! जो बच्चे अपने माता-पिता का कहना नहीं मानते वे सदैव आपत्ति में पड़ते हैं। तुम्हारी शक्तियाँ अभी सीमित हैं। तुम्हारा अनुभव अभी कम है, इसलिए बड़ों की बात मानकर काम करो। ''

बड़े बच्चे की समझ में माँ की बात आ रही थी। गुटरगूँ-गुटरगूं करके उसने माँ की बात का समर्थन किया। सोनी कबूतरी ने कई दिनों तक बड़े बच्चे की मालिश की, तब कहीं जाकर वह ठीक हुआ। इसके बाद फिर उसने कभी अपनी माँ की आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया।

पहेली का उत्तर - लीची

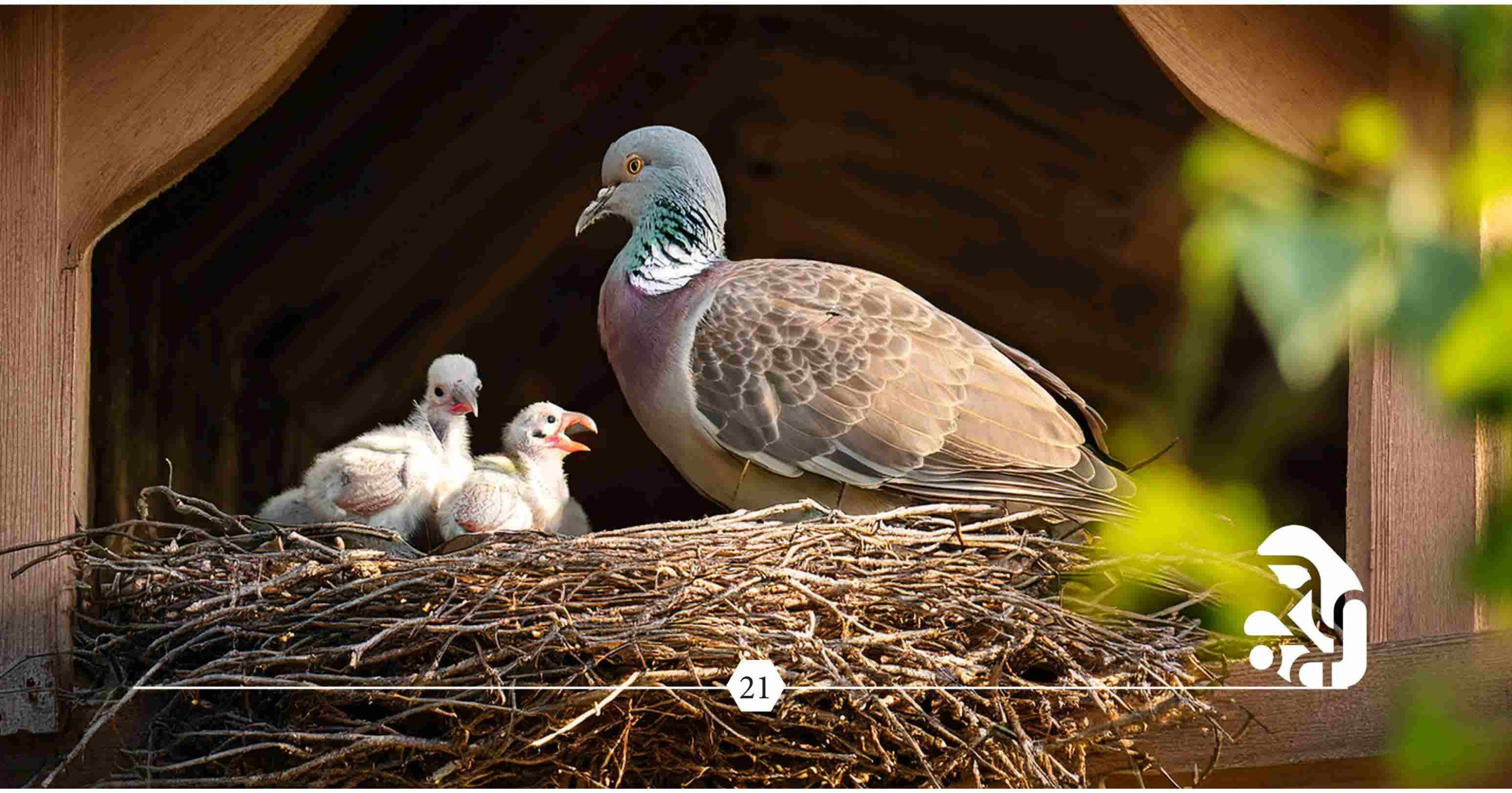

कहानी

चतुर्थ दिवस

स्वात्कं मे द्यावापृथिवी स्वात्कं मित्रो अकरयम् । स्वात्कं मे ब्रह्मणस्पतिः स्वात्कं सविता करत् ।।

- अथर्व. ७/३०/१

हम जब बालक थे तो माता-पिता ने जिस तरह हमारी सेवा-सुश्रूषा की थी हमें भी अपने माता-पिता की वैसी ही सेवा करनी चाहिए । जो ऐसा नहीं करते उनकी विद्या का नाश हो जाता है और वे कृतघ्न कहलाते हैं ।

पहेली ?

हरा-भरा है चबूतरा, भीतर लाल मकान । इधर-उधर उसमें बैठे काले-काले पठान ।

आज्ञापालन से बची जान

बनबसा के अभ्यारण में एक कठफोड़वा पक्षी अपने परिवार के साथ रहता था। इसमें उसके दो बच्चे और एक मादा संगिनी बड़े प्यार से रहा करते थे। नर और मादा का काम बारी- बारी जाकर दाना चुनना और अपने बच्चो के साथ पेट भरना तथा बरसात के मौसम के लिए भोजन एकत्र करना था। उसी वृक्ष के नीचे एक मोटा और काला सर्प रहा करता था।एक दिन उसे पता चला कि कठफोड़वा के बच्चे अब थोड़े बड़े हो गए है और उनके माता - पिता भी अब ज्यादातर भोजन के तलाश में बाहर ही रहा करते है तो क्यों ना कभी उनके बच्चो के दर्शन किया जाए और अपने भूखे पेट को तसल्ली दिया जाए।

हर रोज कि तरह एक दिन जब नर- मादा भोजन की तलाश में उड़ चले तो दुबककर उनके जाने का प्रतीक्षा कर रहा काला सर्प बाहर आया और धीरे-धीरे वृक्ष के उपर चढ़ने लगा,जब वह उनके कोटर के पास पहुंचा तो देखा कि द्वार तो काफी छोटा है फिर मै अंदर कैसे जा सकता हूँ ? तब उसने अपने शैतानी दिमाग से सोचा कि मै अंदर न जा सकूं तो क्या मै उन्हें फुसलाकर बाहर नहीं बुला सकता। ये सोचकर उसने प्यार भरे आवाज मे बोला- बच्चों तुम लोग हमेशा अंदर ही रहा करते हो कभी बाहर भी आओ खेलने, यहां खूब अच्छे - अच्छे पकवान भी मिलता है, यहां बहुत सारे दोस्त भी तुमसे मिलेंगे।

सर्प के बहुत सारे बहाने के बाद भी जब बच्चे बाहर न आए तब लालची सर्प बोला ठीक है मत आओ सारे पकवान मै ही खा जाता हूँ। तब एक बच्चा बोल पड़ा कि क्या पकवान बहुत मीठे है? तब सर्प बोला आकर खुद ही देख लो। तब दूसरा बच्चा बोला नहीं मेरे पिताजी ने मना किया है कि कोई भी बाहर बुलाए मत जाना,बाहर हम लोगों के लिए खतरा है। सर्प

बोला,अरे मै उनका ही दोस्त हूँ और सुबह ही उनसे मिला था और जब मै पकवान बना रहा था तब उन्होंने कहा था कि मेरे बच्चो को थोड़ा सा दे आना। इसी तरह के कई लालच देने के बाद जब बच्चे बाहर न आए तब सर्प बोला ठीक है बाहर मत आओ मै जा रहा हूँ कल फिर आऊंगा और ये कहकर वह वृक्ष से नीचे उतर कर अपने बिल में चला गया।

सायं काल को जब माता-पिता जंगल से भोजन लेकर आए तो कठफोड़वे के बच्चों ने उन्हें दिन की पूरी घटना बताई, यह सुनकर वे दोनों डर गए और उन्होंने पूछा कि तुम बाहर तो नहीं निकले थे, इस पर बच्चों ने एक स्वर में कहा आपने हमें बाहर नहीं जाने की आज्ञा दी थी तो हम उस आज्ञा का उल्लंघन कैसे कर सकते थे ?

यह सुनकर उन माता-पिता ने अपने बच्चों का सर प्रेम से सहलाया।

माता-पिता की आज्ञा मानने पर बच्चों के जीवन में कल्याण ही होता है क्योंकि माता-पिता सदैव बच्चों का हित चिंतन करते हैं।

पहेली का उत्तर - तरबूज़

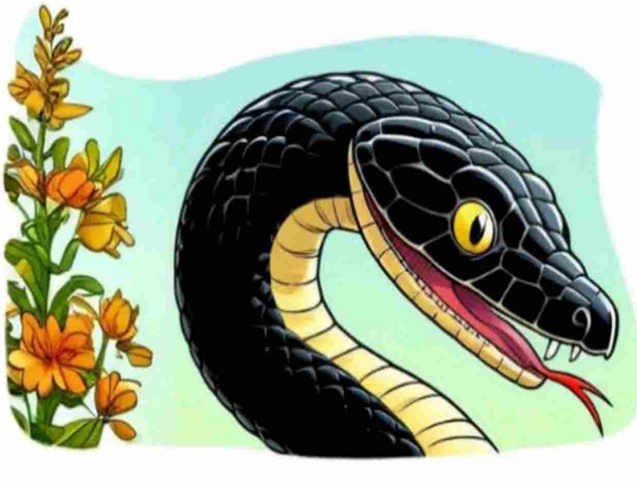

बच्चों की समस्याओं के मनोवैज्ञानिक तथा व्यावहारिक समाधान

- शैलबाला पण्ड्या

बच्चों को आज्ञाकारी कैसे बनायें

जमाने के साथ बच्चों की दुनिया भी बदल रही है। यों कहना उचित होगा कि शिक्षा, सभ्यता तथा अपने संगी-साथियों का बच्चे के ऊपर इतना असर पड़ने लगा है कि अब, माता-पिता ने जो कहा बच्चे बिना हील हुज्जत किए उसी के अनुसार करने लगें, ऐसे उदाहरण बहुत कम देखने को मिलेंगे। मां-बाप भी बच्चों को कड़े नियन्त्रण में रखने में अब विश्वास नहीं करते। क्योंकि मनोवैज्ञानिकों ने यह साबित कर दिया है कि बच्चों के ऊपर बहुत दबाव डालने से उनकी मानसिक तथा शारीरिक शक्तियों का पूर्णतया विकास नहीं होता। फलस्वरूप बच्चे जीवन के संघर्ष में पूरी तौर से अपना पार्ट अदा नहीं कर पाते।

आखिरकार बच्चे की कुछ अपनी भी अक्ल है। गिर-गिर कर ही सबने चलना सीखा है। परन्तु गिरने के डर से किसी बच्चे को चलने से रोकना कौन-सी बुद्धिमानी है? जब बच्चे की बुद्धि का विकास मां-बाप की देख भाल में होता है, तब बुराई और भलाई समझने का उसे स्वयं ज्ञान आ जाता है। हाथ एक बार जल जाने पर कोई भी बच्चा आग में दुबारा हाथ नहीं डालता। वैसे तो अग्नि आदि से दुर्घटना होने को बड़े बड़े लोगों से हो जाती है।

नियमों से जकड़े नहीं— बच्चा आखिर बच्चा ही है। यह बड़ों के सदृश्य सभा समाज के नियमों से अपरिचित है। इसलिये यह मां-बाप का कर्तव्य है कि प्रेम और सहानुभूति पूर्वक सही तरीकों का ही उपयोग करें।

आज्ञा-पालन के विषय में बच्चे के दो रुख होते हैं, एक तो प्रसन्नता-पूर्वक बिना किसी दबाव के कहना मानना, क्योंकि जो मनुष्य उसे हुक्म दे रहा है उसके प्रति उसका विश्वास और प्रेम है। दूसरा रुख है जब बच्चा जानता है कि जो मनुष्य मुझे हुक्म दे रहा है वह मुझसे जलता है, या उसका रुख पक्षपातपूर्ण है या वह हुक्म देने के अयोग्य है ऐसी स्थिति में बच्चा केवल लाचारी में कहना मानेगा।

कई बच्चे ऐसी जिद्द पकड़ लेते हैं कि मां-बाप के हुक्म के सिवा और किसी के हुक्म की परवाह ही नहीं करते। ऐसी आदत बुरी है। बच्चे में सहयोग की आदत और मिलकर काम करने का स्वभाव खेल खेल में पैदा करना चाहिए। इसलिए बच्चा केवल इस भावना से कोई अच्छा काम नहीं करे कि इससे मां खुश होगी या न करने से पिताजी नाराज होंगे। परन्तु इस विचार से करे कि यही करना ठीक है और काम करने से मां-बाप खुश होते ही हैं, इससे यह लाभ होगा कि अच्छे काम को वह किसी व्यक्ति विशेष तक सीमित नहीं रखेगा।

अपने आदेशों में सामंजस्यता रखें। माता-पिता इस बात का ध्यान रखें कि जिन बुराइयों के लिए वे बच्चे को रोकते-टोकते हैं कहीं वही बुराइयाँ खुद उन में तो नहीं है। क्योंकि उपदेश देने से उदाहरण पेश करना अधिक महत्व रखता है। बच्चे भलाई की बनिस्बत बुराई की नकल जल्दी करते हैं। इसलिए यह जरूरी है कि बच्चे को सुधारने से पहले स्वयं चाहिए। अन्य कामों की तरह बच्चे आज्ञापालन करना भी सीख जाते हैं। अच्छे काम का नतीजा सुख और प्रशंसा, बुरे कामों का नतीजा दुःख और सजा है, इन दो नतीजों का उनके कारणों से संबंध है, यह बात उनके मन में भली प्रकार जमा दें।

जिस घर में दो अमली राज होगा अर्थात् मां भी हुक्म दे तथा बाप मां की बात को काट कर दूसरा हुक्म दे, तो इससे बच्चे में अपनी सुविधा के अनुसार काम करने की प्रवृत्ति हो जायगी। माता-पिता के परस्पर झगड़े का भी बच्चे पर बुरा असर

पड़ेगा और वह उच्छृंखल बन जाएगा। बच्चों की उम्र का भी आपको ध्यान रखना चाहिए। शब्द प्रति शब्द तो आप के हुक्म का वह पालन नहीं कर सकते। अगर वह यथा-शक्ति आज्ञा पालन करने की चेष्टा करते पाये जायें तो आप को उन्हें उत्साहित करना चाहिये। पर कुछ हुक्म ऐसे हैं जो उन्हें तुरन्त पालन करने चाहिए जैसे 'वह रख दो' 'इधर आओ' 'फौरन भागो' इन आदेशों को आप खेल में ही पालन करवाएँ तो बच्चे सुनने मात्र से पालन करने के अभ्यासी हो जायेंगे।

आदेश देते समय नीचे लिखी बातों का विशेष ध्यान रखें।

1. बच्चे की सामर्थ्य, योग्यता तथा आयु का ध्यान रख कर जो हुक्म सोच विचार कर दिया गया है उसका पालन बच्चे से अवश्य करायें।

2. हुक्म देने के ढंग तथा कार्य प्रणाली में आप हमेशा परिवर्तन न करते रहें। अन्यथा बच्चा आप के तरीकों तथा स्वभाव से परिचित नहीं रहेगा।

3. आप का व्यवहार बच्चे के प्रति धांधली मचाने वाला या अत्याचारी डिक्टेटर का नहीं होना चाहिए। अगर बच्चा अपने खेल में लगा है और सोने अथवा खाने या कहीं जाने का समय हो गया है, तो उसे दस मिनट पहले से सूचित कर दिया जाय ताकि वह अपना ध्यान खेल से हटा सके। आपकी आज्ञा-पालन के लिए उसे काफी समय मिल जाने से फिर वह आपके प्रति विद्रोही नहीं होगा।

4. किसी काम के करने का आदेश देने से यह अधिक उपयुक्त होगा कि आप उसे स्वयं करते हुए उसमें उससे सहयोग देने को कहें– "आओ बेटा जरा अपने खिलौने तो उठवा कर रखवा लो।" आदेश जहां तक हो सके नकारात्मक न हो टोकने से तो अच्छा यह है कि उसका ध्यान किसी अच्छे काम की ओर आकृष्ट किया जाय।

5. आदेश देते समय आपकी आवाज अधिक आदेशात्मक न होकर एक सप्रेम निवेदन के रूप में होनी चाहिए। अपने मां-बाप से ही बच्चा विनय शीलता सीखता है अन्यथा वह भी लट्ठ मार ढंग से बातचीत करना सीख जाता है।

6. जब आप बच्चे को काम करने को कहें, उस समय आप यह ध्यान रखें कि वह आपकी बात को ध्यान से सुनकर समझ रहा है या नहीं? कभी कभी सुनने में लापरवाही से भी आज्ञा उल्लंघन हो जाती है।

7. एक समय जिस काम के लिए आपने उसे सजा दी थी वह काम करने की इजाजत कभी न दें अन्यथा आपकी हिदायतों का उस पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ेगा। कोई काम कराने से पूर्व उसके उत्साह को जाग्रत करें न कि कहें कि तुम्हें यह करना पड़ेगा। इससे बच्चे के स्वाभिमान को ठेस लगती है।

8. अगर आपने बच्चे को धमकी या इनाम देने का वचन दिया है तो दोनों बातों का पालन अवश्य करें अन्यथा आपकी धमकी का डर और बात की साख दोनों मिट जाएगी।

9. बच्चे में आप अविश्वास न रखें न उसे बदनाम करें। इससे बच्चा हतोत्साह हो जाता है।

10. यदि किसी बच्चे में कोई दोष या कमी हो तो उसके हृदय में यह न जमने दें कि आप नफरत करते हैं परन्तु यह बताएँ कि आप उस बुराई को नापसन्द करते हैं और इस बुराई को छोड़ देने से वह बहुत ही अच्छा बच्चा बन जाएगा।

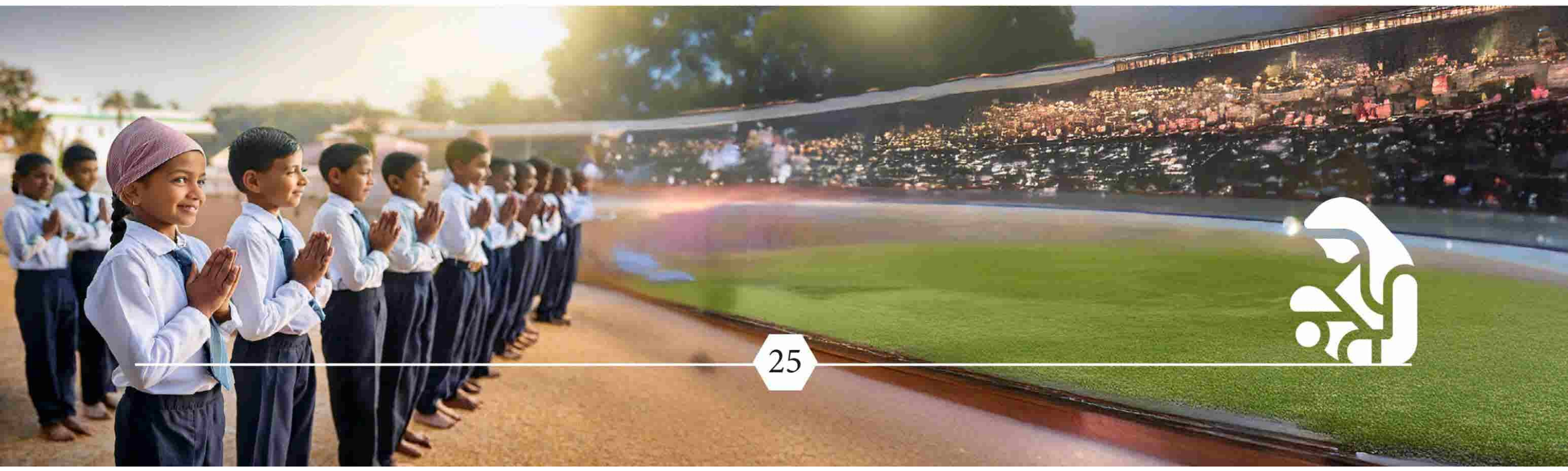

कहानी
पंचम दिवस

अग्ग्ये व्रतपते व्रतं चरिष्यामि ॥

- यजुर्वेद १/५

धर्म की मर्यादाओं का पालन करो। धर्म की मर्यादाओं का उल्लंघन दुखदायी है

पहेली ?

अगर कहीं मुझको पा जाता, बड़े प्रेम से तोता खाता। बच्चे बूढ़े अगर खा जाते, व्याकुल हो आँखें भर लाते।

आज्ञाकारी बालक

शीला नाम की एक बकरी थी। उसके दो प्यारे-प्यारे बच्चे थे। शीला उनका बड़ा ध्यान रखती थी। खूब दूध पिलाती थी, हरी-हरी घास खिलाती थी। कुछ ही दिनों में दोनों बच्चे गोल-मोल मोटे-ताजे हो गए। शीला ने उनके पैरों में घुंघरू बाँध दिए थे। दोनों छम-छम करके घर में कभी इधर घूमते तो कभी उधर।

जो भी उन बच्चों को देखता, उसका जी खुश हो जाता। दोनों बड़े शिष्ट और आज्ञाकारी थे। जो भी उनके घर आता था उससे नमस्ते करते थे। सभी से विनम्रतापूर्वक बातें करते थे।

एक दिन शीला के घर भालू दादा आए। वह पास के एक स्कूल के प्रधानाचार्य थे। जंगल के जानवरों के इतने बच्चे उनके स्कूल में आते थे कि वह खचाखच भरा रहता था। भालू दादा ने बकरी के बच्चों चिंटू और पिंटू को देखा। उनकी शिष्टता से वे बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने सोचा कि इन बच्चों को अच्छी शिक्षा मिलनी ही चाहिए। इससे यह बड़े होकर महान बनेंगे।

उन्होंने बकरी से कहा-‘ दीदी! तुम इन बच्चों को स्कूल में दाखिल क्यों नहीं करा देतीं।

तुम जानते ही हो भैया! इनके पिता तो हैं नहीं। खाने-पीने का इंतजाम भी मुझे ही करना पड़ता है। मैं सुबह ही जाती हूँ और दिन छिपे घर वापस आती हूँ। मेरे पास इतना समय नहीं है कि इन्हें स्कूल छोड़ने जाऊँ और फिर समय से लेने भी आऊँ।’ बकरी भालू दादा से कहने लगी।

‘पर ये तुम्हारे बच्चे तो बड़े समझदार हैं, अकेले ही आ-जा सकते हैं।’ भालू कहने लगा।

‘भैया! कालू भेड़िया बिना किसी बात के मुझसे दुश्मनी बाँधे बैठा है। वह इन बच्चों को भी खाने की ताक में है।’ रुँधे हुए कंठ से बकरी बोली।

‘अम्मा ! हम कभी भेड़िये की बातों में नहीं आएँगे। घर से सीधे स्कूल और स्कूल से सीधे घर ही आएँगे। कृपया हमें स्कूल जाने की आज्ञा दे दो।’ चिंटू-पिंटू दोनों एक साथ बोले।

भालू दादा भी कहने लगे कि बच्चों को घर बैठाने से क्या लाभ ? घर में तो ये बेकार के काम करते हैं। स्कूल जाकर पढ़ेंगे तो नई चीजें सीखेंगे। समय का सदुपयोग होगा। ये बहुत अच्छे

बच्चे बनेंगे। भालू दादा ने ये भी कहा कि स्कूल की माई लोमड़ी बच्चों को ले जाया करेगी और घर छोड़ जाया करेगी। इस बात पर शीला बच्चों को पढ़ाने के लिए तैयार हो गई। दूसरे दिन वह उन्हें स्कूल में दाखिल करा आई।

शीला ने बच्चों को अच्छी तरह से समझा दिया था कि वे स्कूल से सीधे घर आएँ। इसी प्रकार घर से सीधे स्कूल ही जाएँ। इधर- उधर कहीं न जाएँ, रास्ते में कोई कुछ चीज दे तो कभी न लें।

कोई कहीं चलने को कहे तो मना कर दें। उसने बच्चों को बताया कि कालू भेड़िया बच्चों को मिठाई आदि देकर बहकाते हैं। फिर बहकाकर अपने घर ले जाते हैं। वहाँ वे उन्हें मारकर खा जाते हैं। चिंटू-पिंटू दोनों ने माँ को विश्वास दिलाया कि वे कभी किसी की बातों में नहीं आएँगे।

कालू भेड़िये को पता लगा कि चिंटू-पिंटू पढ़ने जाते हैं। उसने सोचा किसी प्रकार दोनों को पकड़ना चाहिए।

एक दिन कालू एक थैले में रस भरी गरम-गरम जलेबियाँ भर लाया। पेड़ के नीचे बैठकर चिंटू-पिंटू का इंतजार करने लगा। कुछ देर बाद उसने देखा कि दोनों बच्चे हाथ में बस्ता लटकाए लोमड़ी माई के साथ चले आ रहे हैं। कालू बढ़कर बोला-'लो बच्चो ! गरम-गरम जलेबियाँ खाओ।'

चिंटू को सहसा माँ की सीख याद आ गई। उसने जलेबी लेने से मना कर दिया। कालू ने बार-बार कहा -" 'थोड़ी सी चख तो लो।' पर चिंटू बार-बार मना करता रहा। हारकर कालू को वापस जाना पड़ा।

पिंटू छोटा था। जलेबी देखकर उसका मन ललचा गया। भालू के जाने बाद वह बोला- "भैया! वह इतना अधिक कह रहा था थोड़ी सी जलेबियाँ चख लेने में हानि ही क्या थी ?"

'नहीं पिंटू ! माँ ने मना किया था न ! माँ की बात तो हमें माननी ही चाहिए।' चिंटू समझाने लगा।

घर पहुँचकर चिंटू ने सारी बातें माँ को बतलाईं। शीला ने उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा कि तुमने बहुत अच्छा किया। बच्चों को पकड़ने वाले खाने-पीने की चीजों में बेहोशी की दवा मिला देते। फिर बच्चों की गठरी बाँधकर उन्हें ले जाते हैं।

कुछ दिनों बाद की बात है कि चिंटू-पिंटू चले जा रहे थे। एकाएक कालू भेड़िया उनके रास्ते में आया। उसके हाथ में बिस्कुट का डिब्बा था। वह कहने लगा- ' लो बच्चो ! यह तुम्हारी माँ ने स्कूल में खाने को भिजवाया है। '

'कौन हो तुम?' चिंटू ने भौंहें चढ़ाकर पूछा।

'अरे! मैं तुम्हारा मामा हूँ बच्चो ! तुम मुझे जानते नहीं ?' कालू कहने लगा।

'तुम हमारे मामा हो तो घर आना। माँ से मिलना तभी हम यह लेंगे।' कहते हुए चिंटू आगे बढ़ गया।

माई लोमड़ी ने कहा-'ले लो बेटा! मामा से मना क्यों करते हो ?' पर पिंटू-चिंटू दोनों ही ने बिस्कुट लेने से साफ मना कर दिया। वे स्कूल की ओर बढ़ गए।

बच्चों को फुसलाने की कालू की सारी कोशिशें बेकार गईं अब तो पिंटू और चिंटू बड़े भी हो गए हैं। कालू भेड़िया जब भी उन्हें देखता है तो लाचार होकर अपने होठों पर जीभ फिराकर ही रह जाता है।

माँ की आज्ञा पालन करने और लालच में न आने से पिंटू-चिंटू दोनों ही भेड़िये का शिकार नहीं बने। अब भी वे अपनी माँ की हर बात को मानते हैं। यही कारण है कि वे बड़े गुणवान बन गए हैं। सभी उनकी बहुत ही प्रशंसा करते हैं।

पहेली का उत्तर - हरी मिर्च

कहानी
षष्ठम दिवस

अन्योअन्यं मभि हर्यत ।

- अथर्व० ३ । ३० । १

एक दूसरे को प्यार करो । प्यार में परमात्मा का निवास है ।

पहेली ?

एक कुँए मे 10 मेढक रहते थे । एक मर गया तो कितने बचे ?

हठ का फल

एक घना जंगल था । उसमें एक पुराना तालाब बना हुआ था । वह तालाब गहरा भी था । तालाब के किनारे जलमुर्गियाँ और उनके बच्चे घूमते रहते थे । वे कभी पानी में तैरते थे । कभी पंखों से एक- दूसरे पर पानी उछालते थे । कभी एकदूसरे से आगे बढ़ने की कोशिश करते ।

तालाब के किनारे पर एक चिंटू नाम के चूहे का बिल था । चिंटू के दो-तीन छोटे-छोटे बच्चे थे । जब चिंटू उनके लिए खाना जुटाने बिल से बाहर निकल जाता था तो बच्चे भी बिल से बाहर निकल आते थे । वे तीनों तालाब के किनारे पर आकर बैठ जाते थे । वहाँ वे देखते कि पानी में जलमुर्गी और उनके बच्चे तैर रहे हैं । उन्हें पानी में खेलते हुए देखकर चूहे के उन तीनों बच्चों का मन ललचा जाता था । उनका मन करता था कि वे भी तैरें । पर वहाँ एक बड़ी सी जलमुर्गी थी । वह उन्हें पानी में नहीं आने देती थी ।

शाम को चूहे के बच्चे घर लौटे । चिंटू के साथ बैठकर सबने खाना खाया । चिंटू के बड़े बच्चे का नाम था- मिंटू । वह बोला- मुर्गी काकी बड़ी खराब है ।'

'क्यों क्या बात है बेटा ? उन्होंने क्या किया ?' चिंटू ने पूछा ।

पिताजी वह खुद तो सारे दिन पानी में खेलती रहती हैं । उनके बच्चे भी पानी में तैरते रहते हैं, उन्हें तो वह मना नहीं करती । हम किनारे पर बैठे-बैठे उनका खेल देखते रहते हैं । हमारा मन करता है कि हम भी उनके साथ खेलें, पर मुर्गी काकी ने मना कर दिया । उन्होंने हमें तालाब में पैर तक भी नहीं रखने दिया ।'

मिंटू की बात सुनकर चिंटू चूहे ने उसे समझाया कि बेटा, मुर्गी काकी तुम्हारी भलाई की बात कहती हैं । हम पानी में तैर नहीं सकते । पानी में जाएँगे तो डूब जाएँगे । तुम अभी छोटे हो, ना समझ हो । तुम्हें बड़ों का कहना मानना चाहिए ।

दूसरे दिन जब चिंटू बिल से बाहर चला गया तो उसके दोनों बच्चे भी बाहर निकले । इधर-उधर घूमकर वे तालाब के किनारे आकर बैठ गए । बड़ी देर तक वे मुर्गी के बच्चों का खेल देखते रहे । कुछ देर बाद बड़ी मुर्गी खाना खाने चली गई । मिंटू ने सोचा कि अब तो हमें कोई रोकने वाला है नहीं, क्यों न हम आज पानी में तैरें ? वह अपने छोटे भाइयों से बोला- 'नीतू चलो आज हम भी तैरेंगे ।'

प्रीतू बोला- 'भैया पिताजी ने मना किया था न।

मिंटू बोला- 'पिताजी को हम बताएँगे ही नहीं। तुझे पानी में खेलना है तो जल्दी चल।'

प्रीतू की बात बिना सुने ही मिंटू तालाब में तेजी से उतर गया।

उसके पीछे-पीछे धीरे-धीरे नीतू प्रीतू भी आगे बढ़े। वे अभी पानी में उतरने की सोच ही रहे थे कि एक आवाज सुनाई दी। कोई जोर से कह रहा था- 'बचाओ-बचाओ।' उन्होंने ध्यान से सुना तो पता चला कि वह आवाज उनके बड़े भैया मिंटू की ही है। बात यह हुई कि तालाब था गहरा, मिंटू जैसे ही उसमें उतरा तो डूबने लगा। अब वही सहायता के लिए जोर-जोर से चिल्ला रहा था। उसकी आवाज सुनकर दूसरे किनारे पर तैर रहे मुर्गी के बच्चे भी दौड़े आए। उन्होंने गोता लगाकर मिंटू को निकालने की बहुत कोशिशें कीं, पर सब बेकार गईं। तालाब गहरा था, मिंटू का कुछ पता नहीं लग पा रहा था। नीतू प्रीतू ने भी तालाब में उतरने की कोशिश की, पर मुर्गी के बच्चों ने रोक दिया। वे बोले कि यदि तुम उतरोगे तो तुम भी डूब जाओगे। विवश होकर दोनों तालाब के किनारे बैठकर रोने लगे। थोड़ी देर में मुर्गी काकी घर से लौटकर आई। नीतू प्रीतू ने उन्हें रोते-रोते सारी बात बताई।

मुर्गी काकी बात समझ गई। तभी उसने अपने बच्चों के पास डूबते- बहते मिंटू को देखा। काकी ने झपटकर अपनी चोंच से उसकी पूँछ पकड़ ली। उसने मिंटू को किनारे पर धूप में लिटा दिया। नीतू प्रीतू भी सहमे से उसके पास बैठ गए। शाम तक मिंटू में चलने-फिरने की हिम्मत न आ सकी। चिंटू चूहा तीनों बच्चों को घर में न पाकर ढूँढ़ता हुआ तालाब के किनारे आया। सारी बात जानकर वह मिंटू को उठाकर घर ले गया। भीगने से मिंटू को बुखार भी आ गया था। कई दिन तक उसने शीलू लोमड़ी की कड़वी दवा खाई, भूखा-प्यासा रहा। तब कहीं जाकर मिंटू ठीक हुआ। उसने और नीतू-प्रीतू ने सोच लिया कि अब हम सदैव बड़ों की आज्ञा मानकर काम करेंगे।

पहेली का उत्तर –
दस मेंढक (क्योंकि मरा हुआ भी वहीं था)

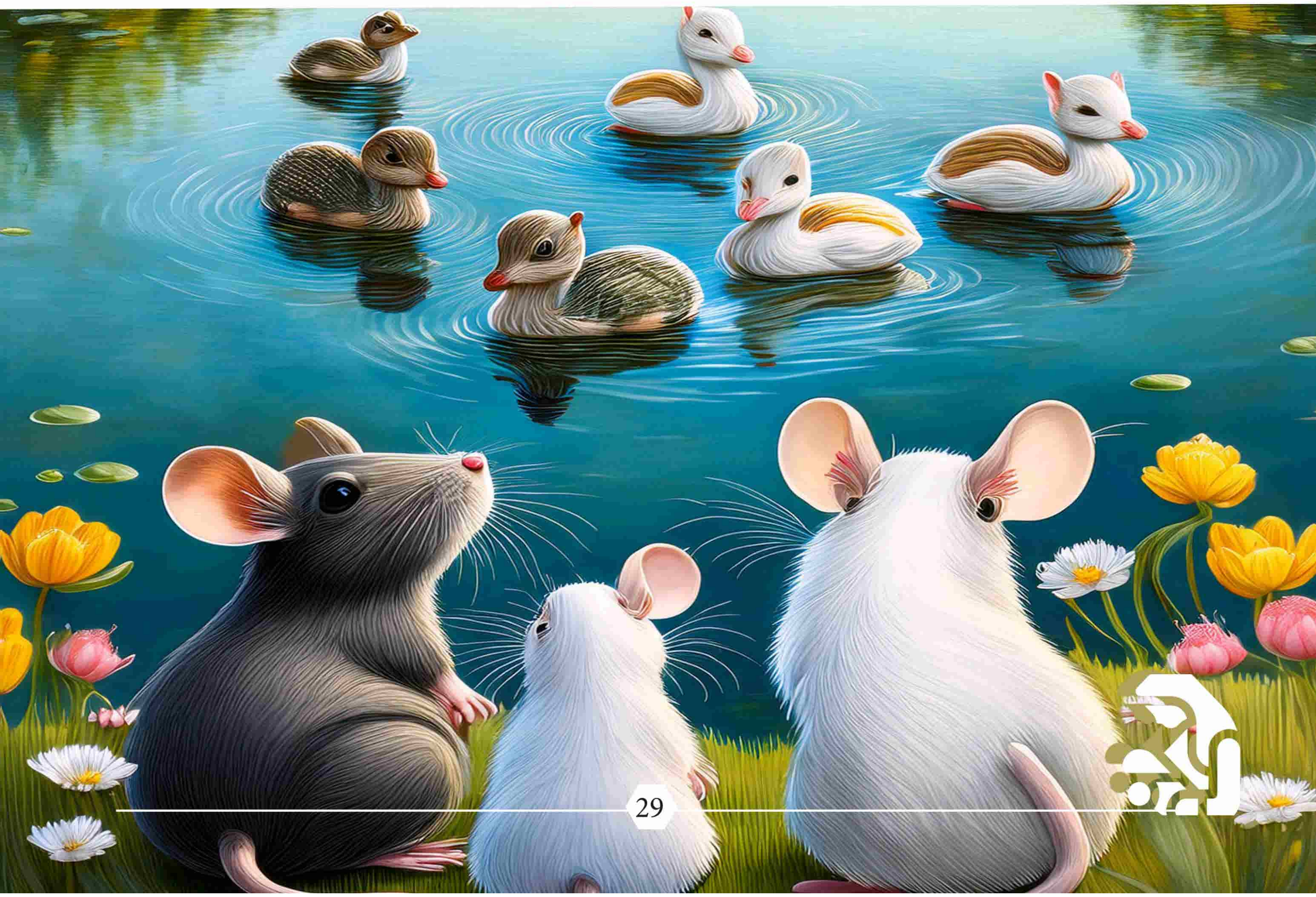

अशात्रिन्द्रो अभयं नः कृणोतु ।

- अथर्व० ६ । ४० । २

मत किसी से शत्रुता करो, मत किसी से डरो । सबको अपना समझने वाला सदा निर्भय रहेगा ।

पहेली ?

एक लाइन खींचो और लाइन को दोबारा छुए बिना उसे छोटा करके दिखाओ ।

माँ से सीख

" चुपचाप तू रुपए मुझे दे दे, नहीं तो फिर मुझसे बुरा कोई न होगा । " विक्रांत कह रहा था ।

" बाबूजी ! मैंने तो रुपए देखे तक नहीं । " यह छोटू की आवाज थी ।

" अरे ! तू ऐसे नहीं मानेगा । " कहकर विक्रांत ने छोटू(धोबी) के गाल पर तड़ाक से तमाचा मार दिया ।

छोटू पीड़ा और अपमान से रोने लगा । शोर सुनकर विक्रांत की माँ कमरे से बाहर निकलीं । वहाँ छोटू दीवार के सहारे खड़ा सुबक सुबक कर रो रहा था । पूछने पर उसने बताया कि विक्रांत भैया कहते हैं कि पेंट की जेब में २० रुपए का नोट रखा रह गया था । छोटू ने दोनों जेबें टटोल डाली थीं, पर वहाँ मुड़ा-तुड़ा कागज भी न था । अब विक्रांत छोटू को चुपचाप नोट रख देने की धमकी दे रहा था ।

माँ ने विक्रांत को डाँटा - " तुम्हें किसी को मारने का क्या अधिकार है ? तुम्हें ही अपनी पेंट की जेब देखकर धुलने के लिए डालनी थी । "

फिर वह छोटू से बोली-"छोटू तुम्हारे ऊपर हमको पूरा विश्वास है । तुम वर्षों से हमारे कपड़े धो रहे हो ।"

जैसे-तैसे समझा-बुझाकर उन्होंने छोटू को घर भेजा । फिर उन्होंने विक्रांत को डांटा - " तुम्हें इस तरह उस छोटे बच्चे को मारने का कोई अधिकार न था । गलती तुम्हारी थी, दूसरे को तुमने क्यों दंड दिया ? "

" माँ ! नोट तो पेंट की जेब में ही रखा गया था । " विक्रांत ने फिर सफाई दी ।

" तुम भूल करते हो विक्रांत तुमने कहीं और रखा होगा । मैं कपड़ों की जेब देखकर ही धुलाई के लिए डालती हूँ । तुम्हारी पेंट भी मैंने देख ली थी, उसमें कुछ न था । " माँ बोली ।

अब विक्रांत निरुत्तर हो गया । आगे वह कहता भी क्या ? उसकी योजना विफल हो गई थी । उसने तो सोचा था कि छोटू को मार-पीटकर, उस पर चोरी का अपराध लगाकर वह अंत में उससे रुपए झटकने में सफल हो जाएगा, पर हुआ इसका उल्टा । माँ ने स्पष्ट घोषणा कर दी "तुमने अपनी लापरवाही से घर खर्च के रुपयों को खोया है । अब ये रुपए तुम्हारे जेब खर्च के रुपयों में से कटेंगे ।"

विक्रांत ने बहुत अनुनय-विनय की, पर माँ ने एक न मानी। वह अपने निर्णय पर दृढ़ थीं। यही नहीं पिताजी और दीदी ने भी माँ की बात का समर्थन किया। उनका कहना था कि विक्रांत बहुत लापरवाह होता जा रहा है। प्रायः रुपए खो देता है, इसलिए उसे दंड मिलना ही चाहिए।

अब माँ ने विक्रांत से बाजार का सामान मँगाना भी बंद कर दिया था। वह चीजें महँगी लाता था और प्रायः रुपए भी बचा लेता था। माँ या पिताजी चाहे कितने ही थके हों, वे स्वयं बाजार जाते। यही नहीं, माँ अब अपने पर्स की भी निगरानी रखने लगी थीं। वे उसे विक्रांत की पहुँच से दूर रखतीं। उन्हें एक-दो बार रुपए खो जाने से विक्रांत पर संदेह हो गया था।

एक सप्ताह तक विक्रांत घर से कुछ भी न पा सका। उसका जेब खर्च भी बंद कर दिया गया था। विक्रांत के साथी उसका उपहास करते और कहते - " वाह भाई भोलेनाथ ! मूर्खराज अपने दोस्तों से कुछ तो सीखो। "

सभी खाते-पीते घरों के लड़के थे। वे अपने घरों से प्रतिदिन कुछ रुपए छिपाकर ले ही आते थे। सभी के रुपए इकट्ठे किए जाते और वे मिलकर खाते-पीते रुपए बिगाड़ते। विक्रांत अभी कुछ दिन पहले ही उनकी मंडली में आया था। चार-छह दिन तो वह जैसे-तैसे रुपए लाने में सफल हो गया था, पर अब इस घटना के बाद से तो वह कुछ भी न ला पाया था। साथी पहले तो उसका मजाक बनाते रहे, फिर उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि यदि तुम दो-चार दिन में घर से कुछ न लाए, तो हमारी मंडली से अलग कर दिए जाओगे। तुम्हारे जैसे मूर्खों की हमें जरूरत नहीं।

विक्रांत को उनकी बात बहुत बुरी लगीं। घर आकर वह मौके की तलाश में जुट गया। रात को वह कुछ सोचते-सोचते जल्दी ही सो गया था। सोते-सोते अचानक ही उसकी आँख खुल गई। माँ और पिताजी की बातें उसे स्पष्ट सुनाई दे रही थीं। पिताजी कह रहे थे– " तुम बहुत दिनों से स्वेटर खरीदने के लिए कह रही थीं। चलो कल बाजार से खरीद लेते हैं। "

माँ कह रही थीं— " पर मैं अब सोचती हूँ कि विक्रांत का कोट सिलवा दूँ। बहुत दिनों से पीछे पड़ रहा है। मुझे तो कोई खास जरूरत भी नहीं, अगले वर्ष खरीद लूँगी। "

पिताजी हँसते हुए कह रहे थे- " तुम तो हमेशा ऐसा ही किया करती हो। "

उनकी बात सही भी थी। विक्रांत को माँ बहुत प्यार करती थीं। वे उसकी इच्छा पूरी करने की कोशिश करतीं। अपनी चीजों में कटौती करके, वे उसके लिए चीज मँगाती। उनका परिवार मध्यम वर्ग का था, इसलिए माँ सदैव बजट के अनुसार ही रुपए खर्च किया करती थीं।

माँ से छल करने के लिए विक्रांत का मन उसको धिक्कारने लगा। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। रात में वह ठीक से भी न सो सका। सुबह माँ ने उसे स्कूल जाने के लिए उठाया, तो उसके सिर में तेज दर्द था। " माँ ! आज तबियत ठीक नहीं, मै स्कूल नहीं जा पाऊँगा। " वह बोला।

उसकी बात सुनकर और लाल आँखें देखकर माँ चिंता से भर उठी। उन्होंने उसका माथा छूकर देखा, सिर पर हाथ फिराया और फिर रजाई उठाकर सोने के लिए कहकर चली गई। काम छोड़कर बीच-बीच में माँ कई बार उसे देखने आई। घर का काम समाप्त होने पर तो वे उसी के पास बैठी रहीं। वे विक्रांत का सिर दबाती रहीं और तेल मालिश भी करती रहीं। अपने प्रति माँ की इतनी अधिक चिंता से विक्रांत रो उठा। वह बहुत ही बड़ी ग्लानि अनुभव कर रहा था।

विक्रांत की आँखों में आँसू देखकर माँ ने समझा कि संभवतः उसकी तबियत अधिक खराब हो गई। उन्होंने उसका सिर गोद में रख लिया और प्यार से बोली- "मेरे बच्चे ! बोलता क्यों नहीं तुझे क्या परेशानी है ?

अब तो विक्रांत माँ से लिपटकर फफक-फफक कर रो उठा। कहने लगा- " माँ ! मैं तुम्हारा गंदा बच्चा हूँ। मुझे खूब मारो, घर से निकाल दो। "

" न-न ! हमारा विक्की तो बड़ा राजा विट्टू है। " माँ स्नेह भरे स्वर में बोली। उन्होंने विक्रांत को कसकर अपने सीने से लगा लिया। उन्होंने अपने आँचल से उसके आँसू पोंछे, फिर उसकी ठोड़ी को ऊपर उठाती हुई बोलीं- " राजा बेटे! सच-सच बताओ क्या बात है ? "

विक्रांत अब माँ से सच्चाई न छिपा सका। उसने चोरी करने वाले बच्चों के समूह में जाने से लेकर अब तक की पूरी घटना माँ को विस्तार से सुना दी।

माँ ने उसके सिर पर हाथ फिराया, माथे को चूमा और उसकी आँखों में झाँकते हुए बोलीं- " विक्रांत ! तुम अच्छा-बुरा कोई भी काम करते समय अपनी माँ को सदैव याद रखना। यह न भूलना कि बुरे कामों का पता कभी न कभी तो लगता ही है। तुम्हारे बुरे काम उसे (माँ को) जीते जी मार देंगे। तुम अच्छे काम करोगे तो अपना सिर ऊँचा करके हँसते-हँसते जी सकोगे और सारी कठिनाइयों को भी सह सकोगे। "

" माँ ! जो गलती हुई है उसके लिए मुझे खूब दंड दो। अब मैं आगे से कभी गलती नहीं करूँगा। " विक्रांत आँखें नीची करके बोला। माँ ने उसके दोनों गालों पर हल्की-सी चपत लगाई और बोली - " कल से तुम प्रतिदिन होने वाली अच्छी या बुरी हर बात माँ को सच सच बताया करोगे। यही तुम्हारा दंड़ है। "

विक्रांत माँ की बुद्धिमानी को समझ न सका। वह उनके सीधेपन पर इतना हल्का दंड देने पर मन ही मन हँस दिया और माँ से लिपट गया।

पहेली का उत्तर –
खींची लाइन के साथ एक लम्बी लाइन खींच दो, पहली लाइन अपने आप छोटी हो जाएगी।

गीत

बड़ों का सम्मान

पात्र आदर श्रद्धा का मान।
बड़ों का करो सदा सम्मान ।।

करो मत आगे बढ़कर भूल।
चुनो उनसे अनुभव के फूल ।।
मार्ग दर्शन है बहुत अमूल्य।
मिलेगा तुम्हें वही बिन मूल्य ।।

सहज बन जाओगे गुणवान।
बड़ों का करो सदा सम्मान ।।

बड़ी है बुद्धि, बड़ी है शक्ति।
और तुम पर उनकी अनुरक्ति ।।
बड़ा है तुम से उनका ज्ञान।
बड़ी है तुमसे उनकी शान ।।
बड़ो की गुरुता को पहचान।
बड़ो का करो सदा सम्मान ।।

बड़े होते हैं बहुत उदार।
मिलेगा उनका तुम्हें दुलार ।।
चलें उन पर रखकर विश्वास।
करोगे अपना पूर्ण विकास ।।
बनोगे तुम सद्गुण की खान।
बड़ों का करो सदा सम्मान ।।

- माया वर्मा

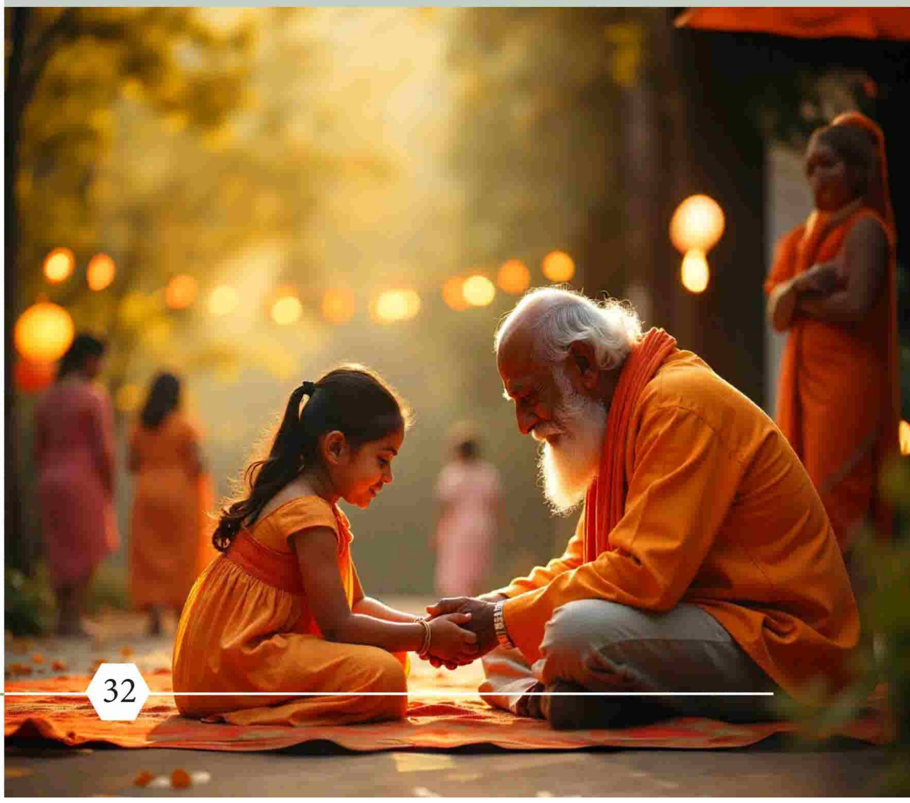

श्रवण कुमार

नाम श्रवण था, मात-पिता का आज्ञाकारी बेटा।
सेवा भाव बहुत था, सदगुण में न किसी से हेठा ।।

था दुर्भाग्य प्रबल, माता व पिता दोनों थे अंधे।
सेवा करते-करते दृढ़ हो गये श्रवण के कंधें ।।

श्रम करता, साधन, सामग्री स्वयं समस्त जुटाता।
भोजन तक अपने हाथों से दोनों को करवाता ।।

सेवा सब होती थी पर जिज्ञासा रहती मन में।
दुनियों में आकर भी उसे न देख सके जीवन में ।।

कई बार कर चुका यत्न, गुरुजन कुछ मार्ग बताएँ।
वो सुंदर संसार निरखने की क्षमता फिर पाएँ ।।

पूछा विज्ञ जनों से इसका कुछ उपाय बतलाओ।
मेरे माता-पिता को दुष्कर प्रारब्ध से छुड़ाओ ।।

कहा किसी ने-चारो धाम तीर्थ यदि ये कर पाएँ।
तो छूटे अंधत्व दोष, दुनियाँ देखें हर्षाएँ ।।

भारी हर्ष श्रवण को हुआ कि मैं यदि यह कर पाऊँ।
तो जीवन हो जाय धन्य माता पितृ ऋण चुकाऊँ ।।

धरती से भी मातु बड़ी होती व पिता इस नभ से।
दोनो का ही स्थान श्रेष्ठ है-सृष्टि बनी है जब से ।।

सबने कहा कि यह सब कैसे संभव हो पाएगा।
मार्ग कठिन है कैसे कोई वाहन पहुँचाएगा ।।

किंतु श्रवण ने कहा जरूरत वाहन की क्या भाई।
देह बनेगी वाहन जो इन ऋषि युग्म ने बनाई ।।

काँवर में उसने दोनों को अच्छी तरह बिठाया।
और उठाकर कंधे पर मग तीर्थ पूर्ण करवाया ।।

चारों धाम कराये दर्शन, ज्योति दृष्टि में आयी।
और श्रवण ने इस जगती में ख्याति अनश्वर पायी ।।

मात-पिता की सेवा का चर्चा जब भी आता है।
नाम श्रवण का तब दृष्टांत स्वरुप लिया जाता है ।।

हमें चाहिए मात, पिता, ज्येष्ठों की गरिमा जानें।
उनकी हर सुविधा को, सुख को सबसे ऊँचा मानें ।।

- माया वर्मा

अभ्यास के बिंदु

- बच्चों को अधिक और लगातार आदेश न दें ।
- अवज्ञा पर अपना आपा न खोयें, धैर्य रखें ।
- आज्ञा में अनुकूलता-प्रतिकूलता का ध्यान रखें ।
- सिर्फ आज्ञापालन ही बच्चों के अच्छे होने का मापदंड नहीं है ।

- बच्चे को सेवक न समझें, और उन्हें लगातार आदेश न दें ।
- एक कार्य समाप्त होने पर दूसरी बात कहें ।
- बच्चे की मानसिक और शारीरिक स्थिति को देख कर आदेश दें

- माता-पिता परस्पर विरोधी आदेश ना दें ।
- आदेश प्यार और सद्भावना पूर्ण हो ।
- सीधे आदेश भी भाषा का प्रयोग न करें , जैसे - पानी ले आओ, वहां चले जाओ ।
- प्यार की भाषा का प्रयोग करें, जैसे- क्या आप पानी पिलाएंगे, क्या वहां चले जाएंगे।

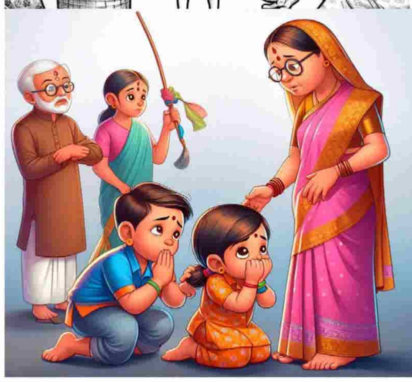

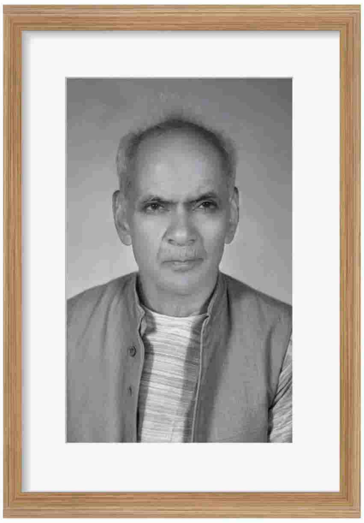

- पण्डित श्रीराम शर्मा आचार्य

"

.................."देश में सब कुछ है, बस व्यक्ति नहीं। कहने को तो लोग बहुत हैं, जनसंख्या भी दिनों दिन बढ़ रही है, पर खरे-परखे उच्चस्तरीय व्यक्ति नहीं हैं । आज के हिन्दुस्तान में न तो गांधी है न सुभाष, न लोकमान्य तिलक और न स्वामी विवेकानंद पर हम गढ़ेंगे और यह सब इस शरीर को छोड़ने के बाद करेंगे ।

..................चिंता की बात नहीं तुम लोगों से करायेंगे, तुम्हें कुछ नहीं करना है । मैं तुम लोगों के पास नई पीढ़ी के बच्चे लाऊंगा, तुम उनके पास बैठना, उनसे अच्छी-अच्छी बातें करना, उन्हें साधनाएं कराना, बाकी पीछे मैं सब कर दूँगा। स्थूल क्रियाकलापों को उत्कृष्ठ बनाने की जिम्मेदारी तुम्हारी और सूक्ष्म में परिवर्तन-प्रत्यावर्तन करने की जिम्मेदारी हमारी ।

"

अखिल विश्व गायत्री परिवार
शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार
हमारे रचनात्मक अभियानों व
कार्यक्रमों हेतु संपर्क करें
youth.awgp.org
FOR ACTIVITIES OF YOUTHCELL
9258360962
9258360652
युवा प्रकोष्ठ, शान्तिकुञ्ज-हरिद्वार
VP 86